श्री जैन दिवाकर जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य मे

साभार अर्थ सौजन्य

१५००) श्री जैन दिवाकर जन्म-
शताब्दी समारोह महासमिति

दिवाकर देशना

सकलनकर्ता
श्री अशोक मुनिजी महाराज

सम्पादन
श्री कन्हैयालालजी लोढा एम ए.

प्रकाशक
श्री जैन दिवाकर फाउण्डेशन
महावीर बाजार, ब्यावर

प्रथमावृत्ति २२००
वि० स० २०३४ विजयदशमी

मुद्रक
श्रीचन्द सुराना के लिए
शैल प्रिन्टर्स, माईथान, आगरा

मूल्य
दो रुपया मात्र

प्राक्कथन

प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्व० श्री जैन दिवाकरजी महाराज की जन्म शताब्दी के पावन-प्रसग पर उनकी वाणी और सन्देश प्रत्येक मानव तक पहुँचे यह उनके श्रद्धालुजनो की भावना है, जो सहज है और जन-मगल की सूचक है।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज लोकनायक सन्त थे। उनकी वाणी मे अद्भुत ओज और हृदय को झकझोर देने वाला जादू था। उनकी वाणी के प्रभाव से हजारो मनुष्यो का जीवन बदला। आज वे हमारे समक्ष नही हैं। पर उनकी वाणी, उनका चिन्तन, उनके हृदयस्पर्शी उपदेश हमारे हाथो मे विद्यमान हैं। आज का मानव उनके सुवचनो से लाभान्वित हो सके, इस दृष्टि से दिवाकर देशना का यह सकलन मैंने प्रस्तुत किया है। यह सकलन गुरुदेव श्री की प्रवचन पुस्तकें "दिवाकर दिव्य ज्योति" के भागो से सग्रह किया है।

भाग-दौड के जीवन मे अतिव्यस्त मानव इन हृदयस्पर्शी छोटे-छोट उपदेशो और सुवचनो को सरलतापूर्वक समझ सकेगा और जीवन मे उतारेगा—इसी शुभभावना के साथ।

—अशोक मुनि

लोकनायक सन्त

प्रसिद्धवक्ता परम श्रद्धेय गुरुदेव

जैनदिवाकर श्रीचौथमलजी महाराज

[परिचय किरण]

भारतीय सस्कृति मे चक्रवर्ती और देवराज इन्द्र से भी बढ कर किसी का सम्मान रहा है तो वह है—सन्त ! ऋपि !

सन्त का अर्थ ही है—सत्यवान, अस्तित्वयुक्त और सर्व सत्ता-सम्पन्न !

सन्त अपने लिए नही, विश्व के लिए जीता है, वह विश्व-कल्याण के लिए ही प्राणोत्मर्ग करता है ।

लोकनायक सन्त स्वर्गीय गुरुदेव जैन दिवाकर श्रीचौथमलजी महाराज भारतीय ऋपि परम्परा के महान सन्त थे। उनके जीवन के कण-कण मे मधुरता, करुणा, वत्मलता, परोपकार-परायणता और विश्वकल्याण की कामना रमी हुई थी, जैमे फूल की कली मे सौरम, ईख के कण-कण मे माधुर्य और जल के प्रत्येक कण मे शीतलता ।

गरीब और अमीर, राजा और रक, झोपडी और महल, मालिक और नौकर सभी उनकी वाणी मे लाभान्वित हुए, जाग्रत हुए, और जीवन उत्थान के लिए प्रेरित हुए । वे ऐमे ममतावादी मन्त थे, जिममे मूर्य की भाँति सयम की ऊष्मा-तेजस्विता और ज्ञान का प्रकाश, दोनो ही थे । उनके उपदेशो मे जाति-पाँति का भेद नही था, उनका भक्त ममुदाय एक वर्ग-विहीन ममता-प्रधान ममाज का प्रतीक था ।



हजारो व्यक्तियो ने मद्य-मास का त्याग किया, हिंसा (शिकार) और जीववध (कसाईपन) को छोड़कर दया माता की शरण ली। हजारो ने सदाचारी और सुसस्कारी जीवन जीने का दृढ सकल्प लिया।

जैन एकता और सामाजिक सगठन के लिए उन्होंने न केवल उद्घोष किया, किन्तु सक्रिय कदम भी उठाया और समाज को मार्गदर्शन भी दिया।

वे स्वय अभयवृत्ति के थे, इसलिए जीवन मे सर्वत्र अभय, मैत्री और स्नेह का सागर ठाठें मारता मिला।

वे त्यागी और निस्पृह थे, इसलिए वैभव चरणो मे लोटता रहा, यश-प्रतिष्ठा की सौरभ अनचाहे भी फैलती रही दूर-दूर तक।

उन महामनस्वी लोकनायक सन्त का जन्म हुआ नीमच नगर (म० प्र०) मे वि० सवत् १९३४ कार्तिक शुक्ला १३ रविवार को। उनकी माता थी श्रीमती केशरदेवी और पिता थे श्रीगगारामजी चौरडिया।

वे स्वभाव से विरक्त और चिन्तनशील थे। फिर भी माता-पिता की ममता ने विवाह बन्धन मे बाँध दिया सिर्फ १६ वर्ष की वय मे।

वैराग्य का रग गहराता गया। सुन्दर पत्नी के मोह को ठुकराकर घर से निकल गये सिद्धार्थ की तरह। स्वनामधन्य गुरुदेव श्री हीरालालजी महाराज के सान्निध्य मे वि० स० १९५२ फाल्गुन शुक्ला ५ रविवार को दीक्षा ग्रहण कर वीतराग भावना मे जुट गये।

सस्कृत-प्राकृत-हिन्दी-गुजराती-उर्दू-फारसी आदि भाषाओ का ज्ञान प्राप्त कर जैन आगम तथा वेद-उपनिषद्-गीता-पुराण कुरान आदि का अनुशीलन किया । इस व्यापक अध्ययन से दर्शनो एव धर्मों के प्रति समत्वभाव बढा, स्व-दर्शन पर दृढ आस्था जमी ।

वे जन्मजात कवि थे । वाणी मे अद्‌भुत माधुर्य और अनिर्वचनीय आकर्षण था । प्रभावशाली देह-कान्ति, विद्वत्तायुक्त ओजस्वी वाणी और वाक्-पटुता ने जादू किया—हजारो हजार जन उमड पडते उनका नाम सुनकर जिनमे होते राजा एव जमीदार, नवाब, सेठ, किसान, सुथार-सुनार, चमार, मुसलमान और अनपढ सरल आदिवासी भील जन भी ।

जैन एकता का झण्डा उठाया उन्होंने और सर्वप्रथम दिगम्बर आचार्य सूर्यसागरजी, श्वेताम्बराचार्य आनन्दसागरजी महाराज के साथ एक मच पर बैठकर जैन एकता का सक्रिय उद्‌घोष किया वि० स० २००७ कोटा मे ।

भगवान महावीर ने ७२ वर्ष की आयु मे निर्वाण प्राप्त किया और उनके परमशिष्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने वि० स० २००७ मृगसर शुक्ला ९ रविवार को कोटा नगरी मे ७३ वर्ष की अवस्था मे क्षणभगुर देह को त्याग कर अमरत्व प्राप्त किया ।

वे कृत-कृत्य हुए और उनके पावन दर्शन मे ससार भी कृतकृत्यता का अनुभव करता रहा ।

उन्ही गुरुदेव के चरणो मे
शत-शत वन्दन ! अभिनन्दन ।

—अशोक मुनि

अनुक्रमणिका



धर्म-महिमा

१ धर्म के विषय मे जो नाना प्रकार के मन्तव्य ससार मे फैले हुए हैं और धर्म के नाम पर मूर्ख लोग आपस मे जो लडाई झगडा करते है, उसे देखकर लोग यह कहने लगे हैं कि धर्म के नाम पर होने वाले झगडो को मिटाने के लिए धर्म को ही समाप्त कर देना चाहिए। ऐसा सोचने वाले और कहने वाले लोग अपने बीमार बाप के इलाज मे मतभेद होने से उसे झगडे का कारण मान बाप को मार डालने वाले मूर्ख पुत्र के समान ही हैं।

—भाग ४ पृष्ठ ८६

२. वायु अपना धर्म-स्वभाव त्याग दे तो आपका जीवन कितनी देर तक कायम रहेगा ? चन्द्रमा और सूर्य तथा पृथ्वी पानी भी अगर अपना-अपना धर्म छोड दें तो जगत मे उसी समय प्रलय छा जाय। इसप्रकार जब हम विचार करते हैं तो साफ मालूम पडता है कि

धर्म के अभाव मे जगत् की स्थिति ही नही रह सकती। अतएव धर्म जगत का पिता है।

—भाग ४ पृष्ठ ८७

३. मानव-जाति का ही नही वरन् प्राणी मात्र का अस्तित्व धर्म के सहारे ही टिका हुआ है। अगर आज सभी लोग अपने-अपने धर्म का परित्याग कर दे तो जगत् की क्या हालत होगी, यह कल्पना ही वडी भयकर है। माता अपने मातृत्व धर्म का पालन न करे तो जन्म होने से पहले ही शिशु का जीवन समाप्त हो जाय। राजा तथा शासक अपने राजधर्म का पालन न करे तो दुनिया मे अन्धेर मच जाय, लूट-पाट और हत्याओ का ऐसा दौर शुरू हो जाय कि जिन्दगी रहना मुश्किल हो जाय। पत्नी अपने धर्म का पालन न करे, पति अपने धर्म को छोड देवे, स्वामी और सेवक भी अपने-अपने धर्म से विमुख हो जाएँ तो ससार किस स्थिति मे जा पडे ?

—भाग ४ पृष्ठ ८६

४. कोई-कोई लोग कहते हैं कि—धर्म की आवश्यकता नही है, किन्तु जिस दिन धर्म इस भूतल से उठ जायगा, माता और पत्नी मे भी अन्तर नही रह

जायगा । धर्म के अभाव मे मनुष्य कुत्ते के समान बन जायेगा ।

—भाग ६ पृष्ठ २६७

५ मनुष्य जब धर्म विहीन हो जाता है, तो उसकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। और बुद्धी के भ्रष्ट हो जाने पर पतन की कोई सीमा नही रहती ।

—भाग ६ पृष्ठ २७४

६ वृक्ष लगाये विना फल कैसे मिल सकता है ? आसमान से फल नही टपक सकते ! पेड लगाया गया है, सींचा गया है, पाल-पोसकर बडा किया गया है तभी तो उससे फल मिलते है ? इसी प्रकार जब धर्म-क्रिया की जायगी तभी उसका फल मिल सकेगा । चाहोगे तब और न चाहोगे तब भी उसका फल मिलेगा ही !

—भाग ७ पृष्ठ ३६

७ धर्म ही वास्तव मे कल्याणकारी है। धर्म से यह लोक सुखमय बनता है। धर्म के प्रताप से ही ऋद्धियाँ प्राप्त होती है। धर्म समस्त मगलो का मूल है। 'धर्मो रक्षति रक्षित ।' तुम धर्म की रक्षा करोगे तो धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा ।

—भाग ७ पृष्ठ १५५

८. धर्म के प्रताप से बड़े से वडे पापात्मा भी धर्मात्मा बन जाते हैं। धर्म वह पारस है जिसके ससर्ग से लोहा भी सोना वन जाता है। —भाग ६ पृष्ठ २३७

९. पापो का त्याग करना धर्म है। जो पापो का त्याग करता है वह सुखी होता है। दुनियादारी के व्यवहार मे ही देख लो, जो गुड का त्याग करता है उसे शक्कर मिलती है और जिसने पत्तल मे खाने का त्याग कर दिया उसे थाली मिलती है।

—भाग ३ पृष्ठ ३३

१०. ससार मे धर्म ही सारभूत वस्तु है। जव ससार की कोई भी शक्ति धैर्य देने मे समर्थ नही होती, तव भी धर्म का आश्रय लेने से मनुष्य धैर्य प्राप्त करता है। धर्म ही सच्चा सहायक और हितैषी है।

—भाग ७ पृष्ठ २८५

११. ससार मे कोई किसी का आधार नही है। जिसे आप आधार मानते हो वह स्वय निराधार। सच्चा आधार एक मात्र धर्म है। वही दुःख से वचाता है। उसी का सहारा लेने से सकट कटते हैं। अतएव इस मोह माया को छोडो और असली तत्व का विचार करो।

—भाग ६ पृष्ठ १२०

१२ धर्म से ही सुख की प्राप्ति होती है। जैसे पत्ते-फूल फल आदि का आधार वृक्ष की जड है, उसी प्रकार धन सम्पत्ति, यश वैभव सुख आदि सबका आधार धर्म है।

—भाग ७ पृष्ठ १९०

१३ मानव समाज से धर्म उठ जाय तो मनुष्य की हालत कुत्ते से भी गयी बीती हो जायेगी। माता-पुत्र और पति-पत्नी मे भी फिर क्या अन्तर रह जायगा ? धर्म उठ जाने के पश्चात क्या मर्यादा शेष रह जायेगी ?

—भाग ११ पृष्ठ ९०

१४. धर्म नही होता तो जीवित रहना भी क्या असम्भव नही हो जाता ? माता अपने मातृधर्म का पालन न करती पिता अपने पितृधर्म का पालन न करता तो तुम्हारी हालत क्या होती ?

—भाग ११ पृष्ठ ९०

१५. भाई, मच्छी के बच्चे को तैरना कौन सिखाता है। खराव बातें जल्दी आ जाती हैं।

—भाग १८ पृष्ठ १४६



धर्म-सहिष्णुता

१. धर्मात्मा बनो धर्मान्ध न बनो। धर्मान्ध तो किसी हद तक अधर्मी से भी ज्यादा खतरनाक होता है। अधर्मी धर्म के नाम पर हिंसा नही करता मगर धर्मान्ध कर डालता है।

—भाग ५ पृष्ठ २३८

२. अन्त करण की समस्त वुराइयो, पापो और दोषो को दूर करने का साधन धर्म है, मगर धर्म को ही जिन्होने ईर्ष्या द्वेष आदि का साधन बना लिया वे किसका सहारा लेकर तरेगे ? ऐसे लोग सवर की जगह आश्रव कर रहे है। इनकी दशा दयनीय है। प्रभु से प्रार्थना है कि ऐसे जीवो को सद्‌बुद्धि प्राप्त हो।

—भाग ४ पृष्ठ २५२

३. विषम भाव से बचकर आत्मा के उद्धार के लिए धर्म का आश्रय लिया जाता है और जब धर्म के विषय मे ही विषम भाव उत्पन्न हो जाय तो फिर आत्मा का

उद्धार नही हो सकता। अतएव धर्म के क्षेत्र मे विषम भाव मत रखो। जिद मत करो। हमने जो समझा और माना है, वही सत्य है, इस अहकार को त्यागो और अन्तरात्मा जिसे स्वीकार करती हो, जो परमार्थत सत्य हो, उसी को स्वीकार करो।

—भाग ४ पृष्ठ २८३

४. धर्म एक है। उसके पथ अनेक हो सकते हैं और श्रेणियाँ भी अनेक हो सकती हैं। कोई धर्म का थोडा पालन करता है कोई अधिक पालन करता है। इसी प्रकार श्रेणी भेद होने पर भी साधना के प्रकार मे अन्तर होने पर धर्म का स्वरूप एक ही रहता है।

—भाग २ पृष्ठ १८८

५. हिन्दू मुसलमान सिक्ख जैन भाइयो ! तुम धर्म व जाति के नाम पर आपस मे द्वेष मत करो। विभिन्न धर्मों के अनुयायी होने के कारण द्वेष करने की क्या आवश्यकता है। दुनिया का कोई भी धर्म द्वेष करना नही सिखलाता फिर भी धर्म के नाम पर द्वेष किया जाता है। वस्तुत धर्म की आड लेकर द्वेष करना अपने धर्म को वदनाम करना है।

—भाग ११ पृष्ठ ६७

६ आश्चर्य तो यह है कि पानी मे भी आग लग रही है। ममता के बन्धन को काटने के लिए धर्म है, पर लोगो ने धर्म को भी ममता का विषय बना लिया है। यह धर्म मेरा है यह धर्म मेरा नही तेरा है। मैं इस सम्प्रदाय का हूँ, और तुम उस सम्प्रदाय के हो ? इस प्रकार का भेद-भाव आ जाने के कारण धर्म भी और सम्प्रदाय भी झगडे के कारण बने हुए हैं। इनको भी आधार बनाकर लोग अपने चित्त को कलुषित करते हैं, और आपस मे ईर्ष्या द्वेष धारण करते हैं।

—भाग ५ पृष्ठ १३२

७ धन, सम्पत्ति, जीवन, जायदाद आदि के लिए जैसे कलह होता है उसी प्रकार धर्म-सम्प्रदाय और पन्थो के नाम पर भी कलह होता देखा जाता है। आग पानी से बुझाई जाती है, परन्तु कदाचित पानी ही आग लगाने लग जाय तो उसका प्रतिकार क्या होगा ? इसी प्रकार दूसरी वस्तुओ के लिए होने वाले कलह को धर्म शान्त करता है। ऐसी स्थिति में धर्म के नाम पर भी कलह और अशान्ती उत्पन्न की जाय तो ससार मे शान्ती का स्थल कहाँ रह जायगा ? धर्म

तो शीतलता प्रदान करने वाला निर्मल जल है। जो लोग उसे आग की ज्वाला के रूप मे परिणत कर देते हैं वे धर्म के शत्रु हैं। ससार के शत्रु हैं। ऐसे लोगो से सावधान रहना चाहिए।

—भाग ११ पृष्ठ १२१

८ ससार मे जितने पन्थ और धर्म हैं, सब आत्मा को उज्ज्वल बनाने के लिए ही है। आत्मा को उज्ज्वल बनाये बिना कल्याण नही हो सकता। आप चाहे स्थानक मे जाइए चाहे मन्दिर मे जाइए, गगा मे स्नान कीजिए या जमुना मे डुबकी लगाइये, मस्जिद मे जाकर नमाज पढिये या गिरजा घर मे जाकर प्रार्थना कीजिए, जब तक आत्मा पवित्र नही होगी, आपका निस्तार नही।

—भाग ११ पृष्ठ २३

६ धर्म को निमित्त बनाकर लोग आपस मे जो झगडा करते हैं, वह झगडा वैसा ही है जैसे बूढे रोगी बाप को निमित्त बनाकर उसके मूर्ख लडके उसके इलाज के लिए आपस मे झगडते हैं। धर्म को खत्म कर देना भी वैसा ही है जैसे अपने बाप को गोली मार देना।

वस्तुत धर्म क्लेश करना नही सिखलाता, लडाई-झगडा करने की शिक्षा नही देता। वह शान्ती एव प्रेम का अक्षय झरना है, और जगत को जीवन देने वाला है। ऐसे महत्वपूर्ण धर्म के विपय मे अगर कोई प्रतिकूल अभिप्राय रखता है तो वह अज्ञान है और घोर अज्ञान है।

—भाग ४ पृष्ठ ८६

१० यह धर्म मेरा और वह धर्म तेरा इस प्रकार की बातें सुनाई देती है। मगर यह धारणा अज्ञान-मूलक है। जैसे सूर्य और चन्द्र का आकाश और दिशा का बंटवारा नही हो सकता, जैसे आकाश सूर्य आदि प्राकृतिक पदार्थ हैं। वे किसी के नही है। अतएव सभी के ही है। इसी प्रकार धर्म भी वस्तु का स्वभाव है और वह किसी जाति, प्रान्त, देश या वर्ग का नही होता। धर्म उसी का है जो उसे स्वीकार कर लेता है धर्म का प्रागण सकीर्ण नही, बहुत विशाल है। वह उस कल्पवृक्ष के समान है जो समान रूप से सबके मनोरथो की पूर्ति करता है और किसी प्रकार के भेद-भाव को प्रश्रय नही देता।

—भाग १८ पृष्ठ १८५

११ भाइयो आज धर्म के विपय मे वडी भ्रान्ती फैल रही है। जैसे धन-सम्पदा के विषय मे लोग कहते हैं कि यह मेरी है और यह तेरी है इसी प्रकार धर्म के विषय मे भी वे समझते हैं कि यह तेरा है और यह मेरा है, यह वडा भारी भ्रम है, जैसे चन्द्रमा और सूरज किसी एक के नही हैं, सभी के है। जैसे वायु और आकाश किसी एक का नही और सभी का है उसी प्रकार धर्म किसी एक का नही सभी का है। उसमे तेरे मेरे की कल्पना कर लेना भारी भूल है किसी प्राणी को न सताना धर्म है, असत्य न वोलना धर्म है, ब्रह्मचर्य का पालन करना धर्म है, ममता के लोभ का त्याग करना धर्म है। पर यह धर्म किसका है ? क्या यह धर्म किसी एक व्यक्ति का, जाति अथवा समूह का है और क्या दूसरे व्यक्ति का जाति अथवा समूह का नही है।

—भाग २ पृष्ठ १८७

१२ जिन महापुरुषो ने धर्म का उपदेश किया है वे किसके थे, जो उनकी शरण मे गये उन्ही के थे। महावीर किसी जाति या वर्ण के उपास्य नही थे। वे क्षत्रिय कुल मे जन्मे थे मगर उनके प्रधान शिष्यगण ब्राह्मण थे।

ब्राह्मणो ने इस धर्म का प्रचार किया और आज इसके अधिकाश अनुयायी वैश्य है। ऐसी हालत मे जैनधर्म क्षत्रियो का माना जाय या ब्राह्मणो अथवा वैश्यो का ? वह तो सभी का है सभी का रहा है और सभी का रहेगा।

—भाग १८ पृष्ठ १८५



धर्म और धर्मात्मा

१ प्रत्येक आत्मा के पास ईश्वरीय गुणो का अक्षय भण्डार है। उन गुणो को विकसित करना प्रत्येक आत्मा के हाथ की बात है। आत्मा चाहे तो अपना विकास करके ईश्वरीय स्वरूप प्राप्त कर सकता है। ऐसा करने के लिए सिर्फ धर्म की आराधना करने की आवश्यकता होती है।

—भाग १० पृष्ठ ४५

२. धर्म, पुण्य और पाप की दुकानो से मन, वचन और काया के जरिये हो रहा है। मन के द्वारा वचन के द्वारा और काया के द्वारा धर्म भी किया जा सकता है। यह तीन प्रकार का व्यापार ही योग्य कहलाता है। आपके लिए तीनो दुकानें खुली हैं। आप स्वतन्त्र है। जिस दुकान से चाहे माल खरीद सकते हैं। किस दुकान मे क्या-क्या माल भरा है यह बात मैंने अभी बतला दी है। आप चाहे तो धर्म की दुकान से मुक्ति

ले सकते है, आपकी इच्छा हो तो पुण्य की दुनिया से ससार के सुख खरीद सकते हैं और चाहे तो पाप की दुकान से दरिद्रता, दर्द, दु ख आदि भी ले सकते हैं ।

—भाग ३ पृष्ठ ७

३. जगत मे अगर सारभूत वस्तु है तो वह धर्म ही है। धर्म को तिलाजली देकर न कभी कोई सुखी हुआ है और न हो ही सकता है। अतएव चाहे और पदार्थ चले जाए परन्तु धर्म न जाना चाहिए। धर्म गया तो सभी कुछ चला गया और धर्म रहा तो सभी कुछ रह जाएगा ।

—भाग १२ पृष्ठ ४०

४ अनघड पत्थर पर कलम चलाकर मूर्ति बनाई जाती है, वह कला है तथा आम के पेड की शाखाएँ जब आडी-टेढी जाने लगती है तो माली उनकी कलम कर देता है इसलिए कि वृक्ष सुन्दर बन जाय। इसी प्रकार अनघड जीवन को ऊँचा बनाने के लिए जो कलम की जाती है वही धर्म है। 'धर्म जीवन का सौन्दर्य है, जीवन का शृ गार है और वह शृ गार

वाहरी नही भीतरी है। धर्म के द्वारा जीवन का अनघडपन दूर होता है। जीवन कृत-कृत्य वनता है और खिल उठता है। जीवन को पाने की सार्थकता धर्म मे ही निहित हैं।

—भाग १८ पृष्ठ १५६

५ जैसे प्रत्येक वस्तु के वाह्य और आभ्यन्तर—यह दो रूप होते है। उसी प्रकार धर्म के भी दो रूप हैं। अमुक वस्तु न खाना आदि धर्म का वाह्य रूप है और चित्त को क्रोध आदि का त्याग करके कषायहीन बनाना धर्म का आन्तरिक रूप है। बाह्य रूप का भी महत्व है पर आन्तरिक रूप का और भी अधिक महत्व है। अतएव आप धर्म के आन्तरिक रूप पर भी विचार करे और उसका पालन करे।

—भाग १ पृष्ठ १३०

६ भाइयो! केवल नर की आकृति पा लेने मे ही कोई महत्ता अथवा विशेषता नही है। नर की आकृति तो वानर मे भी पाई जाती है। मनुष्य की विशेषता आकृति मे नही, सच्चा मनुष्यत्व प्राप्त करने मे है। मनुष्यत्व का अर्थ है नीति और धर्म की मर्यादा को

समझना और उसके अनुकूल वर्ताव करना। इसी अभिप्राय से मनुष्य का दर्जा ऊँचा माना गया है।

—भाग १२ पृष्ठ २०५

७ आहार, भय, मैथुन, शयन इन सब बातो मे मनुष्य और पशु के बीच कोई अन्तर नही है। अन्तर है तो यही कि मनुष्य जिस धर्म का पालन करते है, पशु नही कर सकते। जब मनुष्य और पशु मे केवल धर्म पालन का ही अन्तर है तो यह भी स्पष्ट है कि जो मनुष्य की आकृति को धारण करके भी धर्म का पालन नही करता वह पशु के ही समान है।

—भाग १२ पृष्ठ २०५

८ गेद को ठोकर लगाई जाय तो कोई कह सकता है कि वह कहाँ जायेगी और कहाँ रुकेगी। इसी प्रकार यदि धर्म का आचरण न किया तो क्या ठिकाना है कि आपकी आत्मा कहाँ और किस योनि मे उत्पन्न होगी? किस स्थिति मे रहेगी और कैसे-कैसे कष्ट भोगेगी? अतएव विवेक के आन्तरिक नेत्र खोलकर देखो और परमात्मा का भजन कर लो।

—भाग १२ पृष्ठ १८७

१३ धर्म के लिए जाति विरादरी की कोई मर्यादा नही है। व्राह्मण हो या चाण्डाल हो, क्षत्रिय हो या मेहतर हो कोई किसी भी जाति का हो कोई भी उसका उपार्जन कर सकता है। धर्म का दायरा अत्यन्त विशाल है। वह किसी व्राह्मण का भोजन नही है कि दूसने की नजर पडने से ही अपवित्र हो जाय। धर्म गगा के जल के समान है जो स्वय मलिन नही होता। वल्कि सवकी मलीनता को विना भेदभाव के दूर कर देता है।

—भाग ६ पृष्ठ २

१४ वहुत से लोग समझते हैं कि धर्म परलोक मे ही कल्याणकारी है और वर्तमान जीवन के हित के साथ उसका कोई सरोकार नही है। यह वडी भ्रमपूर्ण धारणा है। धर्म परलोक की भाँति इहलोक को भी सुखमय वनाने वाला है जो इस जीवन को सुधारेगा, उसी का परलोक सुधरेगा। जो अन्याय, अनीति दुर्विचार, दुर्व्यसन और दुराचार के द्वारा अपने इस जीवन को मलिन और पतित वनायेगा उसका परलोक किस प्रकार सुधर सकता है ? ऐसा विचारकर विवेक-

समझना और उसके अनुकूल वर्ताव करना। इसी अभिप्राय से मनुष्य का दर्जा ऊँचा माना गया है।

—भाग १२ पृष्ठ २०५

७ आहार, भय, मैथुन, शयन इन सब बातो मे मनुष्य और पशु के बीच कोई अन्तर नही है। अन्तर है तो यही कि मनुष्य जिस धर्म का पालन करते है, पशु नही कर सकते। जब मनुष्य और पशु मे केवल धर्म पालन का ही अन्तर है तो यह भी स्पष्ट है कि जो मनुष्य की आकृति को धारण करके भी धर्म का पालन नही करता वह पशु के ही समान है।

—भाग १२ पृष्ठ २०५

८ गेद को ठोकर लगाई जाय तो कोई कह सकता है कि वह कहाँ जायेगी और कहाँ रुकेगी। इसी प्रकार यदि धर्म का आचरण न किया तो क्या ठिकाना है कि आपकी आत्मा कहाँ और किस योनि मे उत्पन्न होगी ? किस स्थिति मे रहेगी और कैसे-कैसे कष्ट भोगेगी ? अतएव विवेक के आन्तरिक नेत्र खोलकर देखो और परमात्मा का भजन कर लो।

—भाग १२ पृष्ठ १८७

१३ धर्म के लिए जाति विरादरी की कोई मर्यादा नही है। ब्राह्मण हो या चाण्डाल हो, क्षत्रिय हो या मेहतर हो कोई किसी भी जाति का हो कोई भी उसका उपार्जन कर सकता है। धर्म का दायरा अत्यन्त विशाल है। वह किसी ब्राह्मण का भोजन नही है कि दूसने की नजर पडने से ही अपवित्र हो जाय। धर्म गगा के जल के समान है जो स्वय मलिन नही होता। बल्कि सवकी मलीनता को बिना भेदभाव के दूर कर देता है।

—भाग ६ पृष्ठ २

१४ वहुत से लोग समझते है कि धर्म परलोक मे ही कल्याणकारी है और वर्तमान जीवन के हित के साथ उसका कोई सरोकार नही है। यह वडी भ्रमपूर्ण धारणा है। धर्म परलोक की भाँति इहलोक को भी सुखमय बनाने वाला है जो इस जीवन को सुधारेगा, उसी का परलोक सुधरेगा। जो अन्याय, अनीति दुर्विचार, दुर्व्यसन और दुराचार के द्वारा अपने इस जीवन को मलिन और पतित वनायेगा उसका परलोक किस प्रकार सुधर सकता है ? ऐसा विचारकर विवेक-

वान पुरुष ऐमा विचार करते है जिससे उभय लोक का सुधार हो ।

—भाग १ पृष्ठ १८१

१५. कई लोगो का खयाल है कि धर्म जीवन की सरसता को कम कर देता है और उसे नीरस बना देता है। मैं कहता हूँ ऐसे लोगो ने धर्म का आचरण करके देखा ही नही है। उन्होने बिना किसी आधार के और बिना किसी अनुभव के यो ही अपनी धारणा बना ली है। वह धारणा भ्रमपूर्ण है। धर्म के विपय मे समीचीन मत व्यक्त करने का अधिकार उन्ही को है जिन्होन अपने जीवन मे धर्म का आचरण किया है। जिसने मिश्री चखी ही नही वह मिश्री के स्वाद के सम्बन्ध मे अपना सही मत प्रकट नही, कर सकता। कदाचित ऐमा करने की धृष्टता करता हैं तो उमके मत का कोई मूल्य नही है। वह निराधार प्रलाप मात्र है।

—भाग १७ पृष्ठ ६१

१६ कोई समझता हो कि महाराज के पास जाने मे ही धर्म है या अमुक स्थान जाने पर ही धर्म हो सकता

९ सच्चा मजहब कौन-सा है ? जो किसी को दु ख देने की वात नही करता । जो छ काया के प्राण लूटने की वात वतलाता है, वह मत झूठा है । ऐसे मतो के ग्रन्थो मे थोडी मी वाते अच्छी लिख दी जाती है, और फिर ऐमी-ऐमी अधर्म की वाते भर दी जाती है । लोग उन अच्छी वातो को देखकर समझने लगते है कि ये भी झूठ वोलने मे पाप वतलाते हैं । चोरी करना आदि अच्छा नही कहते आदि । नकली घी वेचने वाला दुकानदार असली घी की मिलावट करता है । कोरा नकली माल विक नही सकता । ग्राहक मिलावट के कारण भ्रम मे पड जाता है और नकली को असली समझकर ले लेता है । धर्मों के विपय मे भी यही वात है ।

—भाग १५ पृष्ठ २००

१०. जड़ मे पानी सीच देने से सभी शाखाएँ और सभी पत्ते हरे-भरे हो जाते हैं, इसी प्रकार अगर आप धर्म का ध्यान रखोगे तो आपके सभो काम सफल होते रहेगे । सुख मे दु ख मे समान भाव से धर्म को समक्ष रखने वाला पुरुप ही सच्चा धर्मनिष्ठ है । ममभावी

है। दृढ विश्वास रखो कि धर्म का वज्र कवच धारण कर लेने पर बडी से बडी आपत्तियाँ भी मनुष्य को व्यथित नही कर सकती।

—भाग १७ पृष्ठ १०३

११ भाइयो, धर्मी और पापी की पहचान क्या है? धर्मी पुरुप के दिल मे दया होती है और दया आने पर वह दु खी के दु ख को मिटा देता है। पापी के दिल मे दया नही होती। वह तो मौका आने पर यही कहेगा कि सालो को सूट कर दो।

—भाग १८ पृष्ठ १५२

१२. धर्म उसी का है जो उसका आचरण करता है। जो धर्म रूपी कल्पपादप की पावनी छाया मे आएगा, उसी का कल्याण होगा। धर्म के लिए उपमा जहाज की दी जा सकती है। जैसे जहाज अतल जलधि के परले पार पहुँचा देता है, चाहे कोई भी वैठने वाला क्यो न हो, कोई भी उसकी आराधना करे। धर्म के लोकोत्तर पोत पर हरिकेशी आरूढ हुए तो वे भी पार हुए और अर्जु न माली जैसे सवार हुए तो वे भी छह महीने मे केवली होकर मोक्ष जा पहुँचे।

—भाग १३ पृष्ठ ६२

२१ जो धर्म करेगा वही उसका फल पायेगा । वाप करेगा तो वाप भोगेगा बेटा करेगा तो वेटा भोगेगा । पत्नी के धर्म से पति को वैकुण्ठ नही मिलता । यह वात तो प्रत्यक्ष देखी जा सकती है कि जो खाता है उसी का पेट भरता है । एक को खाने से दूसरे को तृप्ती का अनुभव नही हो सकता, चाहे उनमे कितनी ही आत्मीयता क्यो न हो ।

—भाग १२ पृष्ठ १६२

२२ हाथ कगन को आरसी की क्या आवश्यकता है ? वह धर्म का फल तो आप चाहे तो इसी जन्म मे प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते है ।

—भाग ५ पृष्ठ १६८

२३. धर्म से परलोक पुधरता है किन्तु इसका अर्थ यह नही समझना चाहिए कि धर्म का इहलोक के माथ कोई सम्वन्ध नही है । वल्कि सत्य तो यह है कि धर्म का इहलोक से प्रत्यक्ष सम्वन्ध है और परलोक से परोक्ष सम्वन्ध है—

भाइयो—यह पृथ्वी धर्म के आधार पर ही टिकी है धर्म के प्रसाद से ही प्राणो मात्र का जीवन है ।

अगर अधर्म ही अधर्म को आश्रय दिया जाय और हिंसा झूठ चोरी और व्यभिचार के आधार पर ही जीवन-यापन किया जाय तो क्या यह पृथ्वी नरक से भी बदतर नही बन जायेगी ? सर्वत्र हत्या, मारपीट लूटपाट को स्थिति मे क्या पल भर जीवित रहना कठिन नही हो जायगा ?

—भाग २ पृष्ठ १७१

२४ धर्म वह कवच है, जो वेदना के बाणो का स्पर्श नही होने देता। धर्म वह विशाल ढाल है जिसके रहते दुनियो के दु खो का प्रहार बेकार साबित होता है। धर्म वह दिव्य आग्नेय अस्त्र है कि जिसके प्रयोग से दु खो की सेना पास तक नही फटक सकती।

—भाग १ पृष्ठ १८२

२५. धर्म को धारण करने वाला अगर निर्धन भी हो तो क्या हुआ ? उसके पास वह स्वर्गीय सम्पत्ति का अक्षय भण्डार होता है, जिसके लिए बडे-बडे सम्राट भी तरसते है। धर्म-विमुख पुरुप लोभ-लालच और तृष्णा की आग मे झुलसते रहते हैं और धर्मनिष्ठ पुरुप

है, अन्यथा नही। यह बात नहीं है। धर्म तो आत्मा का गुण है। जहाँ आत्मा रहेगी वही धर्म रह सकता है। आवश्यकता सिर्फ पाप व्यापार के परित्याग की। अगर तुम्हारा अन्त करण पाप-रहित है। पवित्र है कषाय के कालुष्य से कलकित नही है उसमे प्रशस्त भावनाओ की लहरें उछ्वसित होती रहती है तो तुम कही भी न जाओ तुम धर्मात्मा हो।

—भाग १३ पृष्ठ २१५

१७. घोर पाप करके जो धर्म करना चाहता है उसके लिए आप क्या कहते है ? ऐसी आदमी की तीर्थयात्रा सफल होगी ? उसकी हल कबूल होगी ? नही ? कदापि नही ! यदि गगा मे नहाने से पाप दूर हो जाते तो सरकार खून के बदले फाँसी की सजा क्यो देती ? गगा स्नान ही क्यो नही करवा देती ?

—भाग ११ पृष्ठ २२७

१८ पाप से पाप का शमन नही हो सकता। पापो को धोने का मार्ग धर्म है। तुम धर्म का सहारा लो। धर्म का सहारा लेकर बडे-से-बडे पापी भी तिर जाते हैं। खून से लथपथ कपडा खून से साफ नही होता है।

इसी प्रकार पाप से पाप का नाश नही होता। किन्तु धर्म से पाप का नाश होता है।

—भाग २ पृष्ठ ६४

१६ भाइयो ! धर्म के मार्ग पर चलते हुए कदाचित कोई कठिनाई सामने आये तो भी हिम्मत मत हारो। घबराओ मत। अपनी श्रद्धा मे ढीलापन न आने दो। अपने सकल्प को बलवान बनाये रखो। अगर तुम्हारा सकल्प सबल है तो तुम्हारे सामने आने वाले विघ्न निर्बल हो जायेंगे। और यदि तुम्हारा सकल्प निर्बल है तो बलहीन विघ्न भी प्रबल बन जायेगे।

—भाग ५ पृष्ठ १६६

२० भाइयो, और वस्तु मे पाँती हो सकती है परन्तु धर्म और विद्या मे पाँती नही हो सकती। चार भाइयो मे कोई एम ए एल एल. बी है तो यह सम्भव नही कि वह अपनी विद्या का बँटवारा कर दे—एम ए का ज्ञान एक भाई को दे दे। वकालत की बुद्धि दूसरे को बाँट दे और आप कोरा ही रह जाय ! इसी प्रकार दया और करुणा करोगे तो आपके पीछे है और हिंसा करोगे तो भी आपके पीछे है।

—भाग १२ पृष्ठ १६:

विधर्मियो से लडाई-झगडा नही करता। वह उन पर मध्यस्थ भाव रखता है। परन्तु धर्मान्ध व्यक्ति अपने माने हुए सिद्धान्तो पर भी नही चलता है। फिर भी इतर धर्म के अनुयायियो के प्रति द्वेष और घृणा का भाव रखता है।

—भाग ६ पृष्ठ १०७

३१ कर्तव्य-अकर्तव्य का निश्चय करने के लिए तुम्हे कही जाने की जरूरत नही है। अपने शुद्ध हृदय की ध्वनि को ही सुनो, अन्तर्नाद की ओर कान दो वस निर्णय तुम्हे मिल जायेगा।

—भाग २ पृष्ठ २६३

३२ विज्ञान के साथ धर्म का समन्वय हो जाय तो मानव-जाति के लिए खतरा बना हुआ विज्ञान भी लाभदायक हो सकता है।

—भाग ११ पृष्ठ १४६

३३ भव्य जीवो ! इस ससार मे अगर कोई सारभूत पदार्थ है तो वह धर्म ही है। धर्म के सिवाय और सब पदार्थ असार है। विवेकशील पुरुषो का कर्तव्य है कि वे सारभूत और निस्सार पदार्थों की पहचानकर सारभूत

पदार्थ को स्वीकार करे और निस्सार पदार्थों की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले उद्योग से विरत हो।

—भाग ३ पृष्ठ ४७

३४ जैसे प्रकृति के नियम अटल हैं उसी प्रकार धर्म के तत्त्व अटल हैं।

—भाग ३ पृष्ठ १५३

३५ धर्म ही ससार मे सार है, धर्म करोगे तो धन-धाम आदि सुख के साधन अनायास ही उपलब्ध हो जायेंगे। 'एकहि साधे सब सधे, अर्थात् एक धर्म की आराधना करने मे सबकी आराधना आप ही आप हो जायेगी।

—भाग १० पृष्ठ ४१

३६- धर्म की उपेक्षा करके ससार कदापि शान्ती प्राप्त नही कर सकता।

—भाग १० पृष्ठ १०

३७ जो धर्म का विनाश करता है वह अपने ही विनाश को आमन्त्रित करता है और जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

—भाग १८ पृष्ठ २१८

३८ बाह्य क्रिया काण्ड मात्र से कल्याण नही हो सकता। तिलक लगा लेने से या जटा धारण कर लेने से आत्मा

सन्तोष और शान्ती का अमृत पीता हुआ मुस्कराता रहता है।

—भाग १ पृष्ठ १८२

अपनी इन्द्रियो को काबू मे रखना, मन पर नियन्त्रण रखना अपनी वासना को दबाना और जीवन को सयममय बनाना सदैव धर्म है। यह कभी अधर्म नही होगा। और असयम कभी धर्म नही होगा।

—भाग ३ पृष्ठ १५५

हिंसा आदि अठारह पापो से आत्मा मलिन होती है। वह मलीन आत्मा पानी से शुद्ध नही होती। पानी शरीर को छू सकता है और शरीर ही उसमे धुल सकता है। आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है मगर शरीर की सफाई को लोग आत्मा की पवित्रता समझ बैठते हैं। गगा-यमुना आदि नदियो मे नहाकर समझते है—हमारी आत्मा पवित्र हो गई! भाई थोडा विचार करो कि पानी से आत्मा का पापरूपी मैल किस प्रकार छूट सकता है?

—भाग ११ पृष्ठ ४

धर्म को कही अन्यत्र खोजने के लिए भटकने की आवश्यकता नही है। वह तो आपके ही चित्त मे

निवास करता है. केवल उसे अभिव्यक्त करने की आवश्यकता है। चित्तवृत्ती को सचाई की ओर मोडने भर की देरी है। आपकी चित्तवृत्ति सत्य की तरफ मुडी और उसी समय आपमे धर्म-भाव जाग्रत हो गया।

—भाग ११ पृष्ठ ३१०

२९. ससार मे आज धर्म भी एक प्रकार से सौदा बन गया है। लोग थोडा-सा कोई धर्म का काम करते हैं तो उसका ढिढोरा पीटते हैं। दान देते हैं तो अखबारो मे विज्ञापन करते हैं। इस तरह धर्म-क्रिया को भी कीर्ति का एक साधन समझ लिया गया है। यह अत्यन्त अनुचित है। धर्मक्रिया निर्जरा के लिए ही करनी चाहिए। मान-सन्मान प्राप्त करने के लिए जो क्रिया की जाती है, वह अपना वास्तविक फल नही देती।

—भाग ६ पृष्ठ २५४

३०. धर्मनिष्ठ बनो, धर्मान्ध मत बनो। धर्मनिष्ठ और धर्मान्ध मे बडा अन्तर है। धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपने धर्म पर पूर्ण निष्ठा रखता है। परन्तु धर्म के नाम पर

धूम्रपान

१ तमाखू के सेवन से स्मरण शक्ति का ह्रास हो जाता है। वीर्य मे पतलापन आ जाता है। और जीवनी शक्ति की कमी हो जाती है। इस प्रकार सभी दृष्टियो से तमाखू हानिकारक है।

—भाग २ पृष्ठ २७१

२ तमाखू पीने वाले का घर श्मशान सरीखा दिखाई देने लगता है। जो सूँघता है उसके कपडे गन्दे रहते हैं। अतएव तमाखू का खाना-पीना और सूँघना, सभी कुछ बुरा है। किसी भी रूप मे इसका सेवन नही करना चाहिए।

—भाग २ पृष्ठ २६६

३ राम के मन्दिर मे भी वीडी तमाखू आदि नही चढाई जाती तो राम के भक्त उनका सेवन कैसे कर सकते है। जो राम के भक्त होगे वे उन मादक वस्तुओ के सेवन का परित्याग करेंगे।

—भाग १ पृष्ठ १२७

धैर्य

१ ससार वडा विषम है । यहाँ जो भी आता है, जाने के लिए आता है । सदा ठहरने के लिए आज तक कोई नही आया । इस अवस्था से जो चले गये हैं, उनके लिए आँसू भले ही वहाए जाएँ, मगर वे आँसू उन्हे लौटाकर नही ला सकते । दु खी होना और आर्तध्यान करने से कुछ भी लाभ नही होता अलवत्ता हानि तो है ही । अतएव धीरज धारण कीजिए ।

—भाग ७ पृष्ठ २५८

२ किसी कुटुम्वी का वियोग होने पर अज्ञानी रोता है चिल्लाता है सिर और छाती पीटता है मगर ज्ञानी समझता है कि वियोग होना ही है । इस प्रकार सोचकर ज्ञानी मध्यस्थ भाव का सेवन करते हैं । वह दु ख से अनायास ही वच जाता है ।

—भाग ६ पृष्ठ २३०

३ भाइयो ! जव तुम्हारे सिर पर कोई दु.ख आ पडे विपत्ति तुम्हारे सामने अट्टहास करके खडी हुई हो

शुद्ध नही होती। ब्रह्म निष्ठ वनने के लिए पापो से वचना आवश्यक है।

—भाग ९ पृष्ठ १३३

; नाम से लोक व्यवहार मात्र होता है काम नही होता। अतएव सच्चे जैन वनने के लिए जिन धर्म का सेवन करना आवश्यक है। जैन कुल मे जन्म ग्रहण कर लेने अथवा जैन कहलाने मात्र से कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नही होगा। असली वात तो राग और द्वेष जीत लेने की है।

—भाग ११ पृष्ठ ७०

० अलवत्ता जहाँ तक क्रियात्मक धर्म का सम्वन्ध है, वहाँ तक द्रव्य क्षेत्र काल और भाव के अनुसार किंचित परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है और ऐसा परिवर्तन करने की भगवान ने आज्ञा भी दी है मगर इस सम्वन्ध मे यह वात ध्यान देने योग्य होती है कि जिस समय जो भी परिवर्तन किया जाय, वह धर्म के मूल तत्व के अनुकूल ही होना चाहिए, उससे प्रतिकूल नही। वह जीवन की आध्यात्मिक प्रगति मे सहायक होना चाहिए, वाधक नही।

—भाग ३ पृष्ठ १५५

उपस्थित प्रवल कठिनाइयो को निर्वल वना देगा और आपको विजयी वना देगा।

—भाग ८ पृष्ठ २८

६. धीरज से कठिन से कठिन कार्य सिद्ध हो जाता है। धैर्य मनुष्य की गम्भीरता और शान्ति-प्रियता का सूचक है और यह प्रकट करता है कि वह अपने लक्ष्य के प्रति कितना समर्पित और कितना सच्चा है।

'धी-अस्तीति धीर' जिसके पास बुद्धि है वह धीर है—यह परिभाषा बुद्धिमत्ता की भी सूचक है।



नारी-समाज

१ वहिनो ! तुम्हे अपने कर्तव्य की ओर ध्यान देना है। अपने आप को अवला समझकर जीवन को तुच्छ मत समझो। अपने विलास की सामग्री मत समझो। तुम्हारे भीतर वही आत्मा विद्यमान हैं जो मरुदेवी मे थी। सीता मे थी, द्रौपदी मे थी और चेलना मे थी। तुम पने को हीन मत समझो। तुम्हारी आत्मा भी अनन्त शक्ति से मुक्त है। अपनी शक्ति को पहचानो, उसे विकसित करो। लोभ-लालच मे मत पड़ी रहो। गहनो और कपडो मे मत भूली रहो। अपने, आत्मिक-गुणो को वढाने का प्रयत्न करोगी तो तुम्हारी सौ गुनी शोभा वढ जाएगी। सोना तुम्हारी दृष्टि मे तुच्छ होना चाहिए। तुम्हे भगवान ने चार तीर्थों मे गिना है। तुम्हारा पद छोटा नही है। कहीं भी रहो, किसी भी परिस्थिति मे होओ, अपने धर्म पर

दृढ रहो और दूसरो को भी धर्म पर दृढ करने का प्रयत्न करो ।

—भाग ४ पृष्ठ २८७

२ वहिनो ! अपने तेज को प्रकट करो । अपनी शक्ति को समझो । जिसने वलवान और शूरवीर पुरुषो को जन्म दिया है, वे अवला नही हो सकती । तुम शक्ति का अवतार हो । तुम्हारी आत्मा मे अनन्त वल है । कोई डायन या चुडैल तुम्हारा कुछ नही विगाड सकती । नमस्कार मन्त्र पर श्रद्धा रखो तो कोई भी सकट तुम्हारे पास नही फटक सकता ।

—भाग १४ पृष्ठ २३६

३ वहिनो को भी मैं सावधान करता हूँ । गाडी के पहिया के वरावर गोखरू पहन लोगी तो भी कुछ प्रयोजन सिद्ध नही होने का । यह गोखरू साथ नही जायेंगे । हाँ इन्हे ले जाना हो तो इनका त्याग कर दो । परोपकार मे इन्हे लगा दो, नही तो खाली हाथ जाना पडेगा । और पछताना पडेगा ।

—भाग ४ पृष्ठ २८५

४ वहिनो, गहनों के प्रति तुम्हारे हृदय मे जो आकर्पण है, उमे कम करो । गहनो के वदले सद्‌गुणो को

अपनाओ। सद्गुणो से अपने आपको विभूषित करो। ये जड आभूपण तुम्हारे सौन्दर्य को कभी विकृत करने वाले भी हैं, और सद्गुणो के आभूपण बाह्य एव आन्तरिक सौन्दर्य को विकसित करने वाले हैं। सद्गुण रूपी आभूषणो से तुम्हारी आत्मा भी उद्-भाषित हो उठेगी। परलोक तो सुधरेगा ही, पर इहलोक भी स्वर्ग बन जायगा। सद्गुणो की बदोलत तुम्हारे परिवार मे आनन्द ही आनन्द व्याप्त हो जायगा। ऐसा आनन्द आभूषणो से कदापि नसीब नही हो सकता। अतएव बहिनो! समझो, सोचो-विचारो और गहनो की अत्यधिक ममता को कम करके सद्गुणो की ओर ध्यान दो।

—भाग ८ पृष्ठ १४१

५ स्त्री को पृथ्वी के समान क्षमा से युक्त होना चाहिए। एक परिवार मे अनेक प्रकृतियो के मनुष्य होते हैं सबके मिजाज अलग-अलग हुआ करते है। कभी कोई रुष्ट होता है तो कभी कोई नाराज हो जाता है। स्त्री अपनी क्षमा की शीतलता के द्वारा सबको शान्त रखती है और सँभालती है। स्त्री ऐसा न करे और

वात-वात मे क्रोध करने लगे तो घर कलह का अड्डा वन जाता है। और क्षण भर के लिए भी शान्ती नही मिलती है।

—भाग १ पृष्ठ १०५

६ जिस स्त्री मे क्षमा भाव होगा वह कलहप्रिय नही होगी — जो कलहप्रिय नही होगी उसके घर मे अशान्ती नही होगी और जिसके घर मे अशान्ती नही होगी उसका जीवन आनन्दमय वनेगा। वह अपनी गृहस्थी को ही स्वर्ग के समान वना लेगी।

—भाग १ पृष्ठ १०६

७ सच्ची और आदर्श पत्नी का यही धर्म है कि जव उसका पति नीति का त्याग करके अनीति के मार्ग पर जाता हो, धर्म-विमुख होकर अधर्म की ओर कदम वढाने को तैयार हो, और कर्तव्य से च्युत होकर अकर्तव्य की ओर झुक रहा हो तो वह नि भाव से, दृढता के साथ उसे सच्ची सलाह दे। अधर्म और अकृत्य से पति की रक्षा करे नीति एव धर्म के पथ पर आरूढ करे वाली पत्नी ही वास्तव मे 'धर्मपत्नी' पद कारिणी होती है। इसके विपरीत जो

मे पति का साथ देती है, उसके अनाचार का विरोध नही करती, अथवा उसे प्रोत्साहन देती है वह धर्मपत्नी नही कही जा सकती, उसे अधर्मपत्नी कहना ही अधिक उचित होगा।

—भाग १५ पृष्ठ २६८

८ "अगर ससार मे स्त्रियां न होती तो काम विकार न होने से सब जीव मोक्ष मे चले जाते।" यह बात ठीक नही है। स्त्रियां न होती तो फिर पुरुष आते ही कहाँ से ? वास्तव मे स्त्री मोक्ष मे बाधक नही है। बाधक है काम-विकार। अतएव काम विकार को ही जीतने का प्रयत्न करना चाहिए।

—भाग ६ पृष्ठ २४०

९ जो महिलाएँ विवश और लाचार होकर विधर्मियो के चँगुल मे फँस गई, उन्हे भ्रष्ट मान लेना और सदा के लिए बहिष्कृत कर देना और उन्हे न अपनाना हिन्दुओ के लिए कलक की बात है। ऐसी जाति दुनिया मे जीवित रहने योग्य नही है। जैन धर्म हरगिज ऐसी मूर्खता का समर्थन नही करता है।

—भाग १ पृष्ठ ९६



निन्दा-स्तुति में समता

१ 'जो पुरुष आत्मतत्व का वेत्ता होता है, वह अपने अवगुणो, दोषो और त्रुटियो पर नजर रखता है।' दुनिया उसके गुणो को देखती है और सराहती है। और वह अपने दोषो को देखता और धिक्कारता है। उसे अपनी छोटी सी भी त्रुटि कांटे की तरह चुभती है। इसके विपरीत जो आत्मतत्व से अनभिज्ञ है, जो धर्म के रहस्य को नही समझ पाया है वह अपने अवगुणो को नही देखता, वल्कि अपने अवगुणो को भी गुण के रूप मे ग्रहण करता है। दुनिया उसके दोष देखती है और वह अपने गुणो का ढिंढोरा पीटा करता है।

—भाग ३ पृष्ठ १३०

२ साधु अपशब्द सुनकर भी क्षमाभाव रखते है। वे समझते है कि अपने आप शब्द मे कोई शक्ति सुख-दुःख उत्पन्न करने की नही है। जब सुनने वाला किसी

शब्द को दु खजनक मानता है, तभी शब्द दु ख उत्पन्न करता है। यही बात सुखजनक शब्द के विषय मे है। साधु किसी शब्द का दु खप्रद नही मानता तो कोई भी शब्द उसे दु ख नही पहुँचा सकता। समता के शान्त सरोवर मे अवगाहन करने वाला साधु अपने समभाव के यन्त्र से समस्त शब्दो को सम बना लेता है। अतएव कोई भी शब्द उसके चित्त मे विषयभाव उत्पन्न करने मे समर्थ नही होता।

—भाग २ पृष्ठ २४०

३ दुनिया दुरगी है। यहाँ सब तरह के लोग हैं। विवेकवान भी हैं और अविवेकी भी है। किस किसके कहने पर ध्यान दिया जाय ? सारे ससार को कोई सन्तुष्ट नही कर सकता। इसलिए दुनिया की परवाह न करके हमे तो हित-अहित का ही विचार करना चाहिए।

—भाग १ पृष्ठ २४०

४ वास्तव मे सन्तो की विचारधारा और ही प्रकार की होती है। वे जानते हैं कि जैसे प्रशसा से आत्मा का उत्थान नही होता उसी प्रकार निन्दा से आत्मा का पतन नही होता। आत्मा के उत्थान और पतन के

कारण अपना विचार और आचार है। दूसरो के अच्छा कहने से ही कोई अच्छा नही वन सकता और वुरा कहने मात्र से ही कोई वुरा नही हो सकता।

—भाग १ पृष्ठ १४५

५ जिसने निन्दा और प्रशसा को जीत लिया है जो 'समो निन्दा-पससासु' अर्थात् निन्दा और प्रशसा से समभाव धारण करता है, जो निन्दा सुनकर विवाद का और प्रशसा सुनकर हर्ष का अनुभव नही करता, वही सच्चा सन्त या महात्मा है।

—भाग १ पृष्ठ १४५

६ गहरा विचारकर देखा जाय तो प्रतीत होगा कि निन्दा की अपेक्षा प्रशसा मनुष्य के लिए अधिक हानिकारक सिद्ध होती है। मनुष्य को जव प्रशसा मिलती है तो वह उसमे फूल जाता है और अपनी त्रुटियो को, अपने दोषो को और अपनी वुराइयो को भूल जाता है। वह विचार करने लगता है कि प्रशसा तो हो ही रही है। अव दोषो को दूर करने की आवश्यकता क्या है ? इसके विरुद्ध निन्दा कभी-कभी लाभदायक सिद्ध होती है। निन्दा मनुष्य को आत्म-निरीक्षण की

ओर प्रवृत्त करती हैं और आत्म-निरीक्षण से दोषो का परित्याग करने की ओर झुकाव होता है।

—भाग १ पृष्ठ १४५

७ समझदार मनुष्य वह है जो निन्दनीय विचारो को अपने पास नही भटकने देता है और निन्दनीय कार्यो से दूर रहता है, मगर निन्दा और प्रशसा से नही डरता और उनसे हर्ष एव विषाद का अनुभव नही करता।

—भाग १ पृष्ठ १४५

८ समाज सेवको को अज्ञान लोगो की आलोचना का विचार न करके अपने सेवा कार्य को जारी ही रखना चाहिए। अगर वे छोड देते हैं तो वह उनकी बुजदिली है। मानना होगा कि उनका दिल ही मजबूत नही है। 'बके सो बकने दो और अपना काम धकने दो' ससार मे कौन ऐसा हुआ है या आज है जिसे मानपत्र ही मिले हो और अपमान पत्र न मिले हो ? भगवान् महावीर से बडा कोई तपस्वी नही हुआ मगर गोशालक जैसे उन्हे भी ढोगी कहते थे ? गांधीजी

इसी युग मे हुए हैं। उनका त्याग और बलिदान क्या कम था ? फिर भी क्या उनके निन्दक नही हैं ?

—भाग ५ पृष्ठ १७५

६ नीति और धर्म के मार्ग पर चलते हुए भी त्याग और तपस्या को अपनाने पर भी सघ और समाज की नि स्वार्थ भाव से सेवा करने पर भी अगर कोई तेरी बुराई करता है तो उसे करने दो। उसकी बातो पर तू कान मत दे। कुत्ते भौंकते रहते है और हाथी चलता जाता है। किसी के द्वारा अपनी झूठी बुराई सुनकर तू हताश होगा तो वह तेरी ही कमजोरी गिनी जायगी।

—भाग ५ पृष्ठ १७६



नियम-प्रतिज्ञा-व्रत

१ प्रतिज्ञा के निमित्त से मनुष्य पतन से बच जाता है प्रतिज्ञा जीवन को ऊँचा उठाने वाली शक्ति भी है। वह दोहरा काम करती है। नीचे गिरने से बचाती है और ऊँचा उठाती है।

—भाग ६ पृष्ठ २६०

२ प्रतिज्ञा के कारण सैकडो मनुष्य गिरते-गिरते सँभल गये है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। गाँधीजी के जीवन मे भी इसीप्रकार की घटना का उल्लेख आया है। जैन मुनि के समक्ष विलायत जाते समय उन्होने तीन प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की थी। उन प्रतिज्ञाओ की बदौलत वे अपनी पवित्रता की रक्षा कर सके थे। गाँधीजी को महापुरुष और विश्वमान्य पुरुष मानने मे उन प्रतिज्ञाओ का भी बहुत बडा योग था, यह बात हमे भूलना नही चाहिए।

—भाग १७ पृष्ठ ८२

३ जो लोग किसी नियम का पालन करना तो अच्छा समझते है, परन्तु प्रतिज्ञा लेना अच्छा नही समझते, समझना चाहिए कि उनके दिल मे कही-न-कही दुर्बलता अवश्य छिपी है। वे समय आने पर गिर जाने के लिए रास्ता रखना चाहते हैं। अन्यथा क्या कारण है है कि वे प्रतिज्ञा लेने से भयभीत होते हैं ?

—भाग ६ पृष्ठ २६०

४ जो जिस काम को करना तो नही चाहता, मगर न करने की प्रतिज्ञा भी नही लेना चाहता—समझना चाहिए कि उसके हृदय मे पहले से ही कमजोरी मौजूद है। उसके सकल्प मे दृढता नही है। ऐसा ढिलमिल वाला व्यक्ति कभी भी अपने निश्चय से गिर जाता है।

—भाग १७ पृष्ठ ८२

५ "हर तरह के बन्धनो से पहले बंधे हैं, फिर प्रतिज्ञा का नवीन बधन क्यो स्वीकार किया जाये ?" ऐसा विचार करने वाले को समझना चाहिए कि पशुओ को यदि सदा के लिए खुला छोड़ दिया जाय तो वह जगल मे भी चल सकता है और वहाँ हिसक पशुओ का शिकार

हो सकता है। वन्धन मुक्त पशु को चोर भी चुराकर ले जा सकता है। वह अनेक विपदाओ मे फँस सकता है। अतएव उसे हानि से वचाने के लिए भी वन्धन मे वाँध रखने की आवश्यकता होती है। और इसी मे उसका हित निहित है। इसी प्रकार मनुष्य के जीवन मे जव तक पाशविक वृत्तियाँ विद्यमान है और उसका समूल उन्मूलन नही हो गया है। तव तक उसे स्वेच्छा स्वीकृत वन्धनो को अपनाये रखने की आवश्यकता है। प्रतिज्ञा इसी प्रकार का एक प्रशस्त वन्धन है जो मनुष्य को असन्मार्ग से वचाता है। मन मे जव दुर्वल भावना उत्पन्न होती है। और दुर्वलता के कारण जव वह सन्मार्ग से विचलित होने लगता है, उस समय प्रतिज्ञा का वन्धन उसे वल प्रदान करता है सकल्प मे दृढता उत्पन्न करता है।

—भाग १७ पृष्ठ ८१

जड सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए आप मजवूत तिजोरियाँ खरीदते हो। उनमे ताले लगाते हो, और फिर भी चौकन्ने रहते हो कि कभी कही से चोर घुमकर सम्पत्ति न ले जाय, परन्तु जो तुम्हारी

असली सम्पत्ति है, उसकी सुरक्षा की ओर ध्यान नही देते । उसकी रक्षा के लिए कहाँ प्रयत्न करते हो । पाप कर्म का त्याग करना उसकी रक्षा के लिए ताला लगाना है । मगर कहाँ तुम यह ताला लगाते हो ? इतना ही नही, तुम तो जान-बूझकर चोरो को भीतर घुसेडते हो । देखते भालते भी अपना माल लुटाते है । और इसी मे प्रसन्न होते हो । तुम्हारी यह हालत देखकर ज्ञानी जनो को तरस आता है ।

—भाग ६ पृष्ठ ५३

७ प्रतिज्ञा कर लेने पर मनुष्य अनेक पापो से छुटकारा पा लेता है। प्रतिज्ञा आपके निर्बल हृदय का सबल बनाती है ।

—भाग १४ पृष्ठ १३८

८ कैसी भी रेतीली नदी बीच मे आ जाय, धोरी बैल हिम्मत नही हारता । वह रास्ता पार ही कर लेता है । वह वहन किये भार को बीच मे नही छोडता । इसी प्रकार सुदृढ श्रद्धा वाला साधक अगीकार की हुई साधना को पार लगाकर ही दम लेता है ।

—भाग १४ पृष्ठ २७७

९ एक बार जो अपनी मर्यादा से डिगा, उसका फिर ठिकाना नही रहता। लुढकने वाला कहाँ जाकर रुकेगा, यह कौन कह सकता है ?

—भाग ६ पृष्ठ २४४

१० जो नर या नारी लोक लाज से प्रतिष्ठा पाने के विचार से, ऊपर दिल से प्रतिज्ञा लेते है, वे कठिनाई आने पर उससे भ्रष्ट हो जाते हैं और फिर दुहरे पाप के भागी बनते है।

—भाग २ पृष्ठ ९०

११ सोच-विचार कर त्याग एव नियम को स्वीकार करना चाहिए। एक बार जो त्याग अपना लिया उसे फिर तोड देना अच्छा नही है। प्रतिज्ञा भ्रष्ट होना तुच्छ और अप्रामाणिक लोगो का काम है।

—भाग ५ पृष्ठ ६४

१२. सत्यवान व्यक्ति जिस वस्तु का त्याग कर देता है, उसे फिर किसी भी अवस्था मे ग्रहण करने को उद्यत नही होता। जो अपने त्याग से च्युत होता है, वह कमीना समझा जाता है।

—भाग ५ पृष्ठ ६५

१३. अधर्म का सेवन करने पर भी जब जीवन चल जाने को है, तो फिर आत्मा का अहित करना कौन-सी बुद्धिमत्ता है ? इस प्रकार विचार करने वाले पुरुष अपनी प्रतिज्ञा को त्यागने के लिए कभी तैयार नही होते।

—भाग ७ पृष्ठ २२४

१४. अगर कोई मनुष्य धर्म के जहाज मे बैठकर फिर कूद पडता है, अर्थात् ग्रहण किये हुये व्रत—प्रत्याख्यान को त्याग देता है तो यह उसी का महान दोष है।

—भाग ६ पृष्ठ २८३



भगवद्-स्तुति

१. भगवान की विनय भक्ति और स्तुति करने से हृदय निर्मल होता है और हृदय की निर्मलता ज्यो-ज्यो बढती जाती है त्यो-त्यो आत्मिक सुख यानि निश्चिन्तता आदि की वृद्धि भी होती जाती है। यह भगवान के नाम की महिमा है।

—भाग ७ पृष्ठ १३४

२ कमलो को विकसित करने के लिए सूर्य को यहाँ नही आना पडता है, और न उन्हे विकसित होने के लिए सूर्य के पास जाना पडता है। सूर्य की प्रभा ही यहाँ के कमलो के विकास का कारण बन जाती है। इसी प्रकार भगवान हमसे कितनी ही दूरी पर स्थित क्यो न हो शुद्ध अन्तःकरण से उनकी स्तुति की जाय, निर्मल चित्त से उनका ध्यान किया जाय तो आत्मा पवित्र हो जाती है।

—भाग १४ पृष्ठ २८६

३. जो नीम के पत्ते खायेगा उसका मुँह अवश्य कड़ुवा हो जायेगा और जो मिश्री खायेगा उसके मुँह मे मिठास आयेगी। प्रत्येक वस्तु अपना गुण आप ही प्रकट कर देती है। उसे प्रकट करने के लिए किसी को कहने-सुनने की आवश्यकता नही होती। इसी प्रकार जो सन्तो और महात्माओ की स्तुति करेगा उसे अपने आप ही शुभ फल प्राप्त हो जायगा और जो निन्दा करेगा वह अशुभ फल का भागी होगा। इसके लिए आशीर्वाद और शाप देने की जरूरत ही नही है। जिसने भक्ति की है, उसे फल मिले विना नही रहेगा। सेवा का मेवा अवश्य ही मिलेगा।

—भाग २ पृष्ठ २४१

४ जितना खाया जायेगा और पचाया जायगा उतने का ही रस वनेगा और उसी परिमाण मे शरीर को पोपण मिलेगा। इसी प्रकार भगवान के गुणो की जितनी स्तुति करोगे और उससे हृदय को द्रवित करोगे उतना ही लाभ होगा उतना ही आत्मा को पोपण मिलेगा।

—भाग १२ पृष्ठ २०१

५. परमात्मन्! मैं जैसा हूँ सो हूँ। आप मेरी ओर न

देखिए ! अपने विरुद का विचार कीजिए। अपने विरुद का विचार करके तार सके तो तार दीजिए। मैं लोहा हूँ, आप पारस है। पारस की विशेषता यदि है तो सिर्फ इसी कारण कि वह लोहे को सोना बना देता है। उसमे यह विशेषता न होती तो कौन उसकी महत्ता अगीकार करता ?

—भाग १६ पृष्ठ ८२

६ सूर्य किसी के कहने से अन्धकार को नष्ट नही करता, वल्कि उसका स्वभाव ही ऐसा है कि उसका उदय होने पर अन्धकार ठहर ही नही सकता, इसी प्रकार भगवान की स्तुति का प्रभाव ही ऐसा है कि उसके सामने पाप नही ठहर सकते।

—भाग ७ पृष्ठ २००

७ भगवन् ! समस्त दोपो से रहित आपके स्तवन से जगत के जीवो के पापो का नाश हो जाता है, इसमे वडी वात क्या है ? मगर आपका स्तवन तो दूर ही रहे, आपकी कथा मात्र से भी समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। सरोवरो मे उगे हुए कमलो को सूर्य की

प्रभा भी विकसित कर देती है। साक्षात सूर्य की तो वात ही क्या कहनी है ?

—भाग ६ पृष्ठ ५३

८. भगवान की स्तुति करने से आत्मा के गुणो का विकास होता है और आत्मिक गुणो का विकास होने पर उसे परमात्मपद की प्राप्ति हो जाती है।

—भाग ११ पृष्ठ २६१

परोपकार

१. परोपकार करके ऐहसान जतलाना वडप्पन की वात नही है । जगत की व्यवस्था को देखेंगे तो मालूम होगा कि परस्पर एक दूसरे के सहयोग, सहायता और उपकार के विना मनुष्य का क्षणभर भी काम नही चल सकता । एक व्यक्ति को अपने जीवन-निर्वाह के लिए सैंकडो वस्तुओ की आवश्यकता होती है । उन वस्तुओ के निर्माण मे हजारो और लाखो आदमियो का सहयोग अपेक्षित होता है ।

—भाग ७ पृष्ठ २३८

२ जरा विचार कर, ससार मे आकर तूने क्या किया ? किसी का भला किया ? नही किया तो जैसे गली-गली भटकने वाला कुत्ता पैदा हुआ या न हुआ वरावर है ? उसी प्रकार तेरा जन्म लेना न लेना भी समान है । यह वडे वकील है और यह वड़े भारी सेठ है ! है तो क्या हुआ, जाति और देश का इनका इनसे क्या भला

हुआ ? अगर कुछ भी न हुआ तो इनका बडप्पन किस काम का ? बडप्पन अपना स्वार्थ सिद्ध करने मे नही परोपकार करने मे है ।

—भाग १५ पृष्ठ ४७

३. परोपकार करने के अनेक तरीके है । परन्तु सर्वश्रेष्ठ तरीका यह है कि आप दूसरे को धर्म के मार्ग मे लगा दीजिए । धर्म-मार्ग मे लगा देने से उसका परम कल्याण होगा और इससे आपको भी बडा लाभ होगा ।

—भाग ७ पृष्ठ २३८

४ वृक्ष, नदी और गाय जैसे भी जब हमारा इतना उपकार कर रहे हैं तो क्या हम मनुष्य ससार मे सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने का दावा करने वाले इनसे भी गये बीते साबित हो ? क्या हम अपने विवेक का प्रयोग करके, परोपकार के लिए अपने जीवन को अर्पित करके अपनी महत्ता को प्रकट नही कर सकते ?

—भाग १२ पृष्ठ ६९

५. प्रत्येक मनुष्य के जीवन निर्वाह के लिए कितने मनुष्यो और दूसरे जीवो की सहायता की आवश्यकता होती है । अगर आप दूसरो का थोडा बहुत उपकार करते

हैं तो एहसान की वात ही क्या है ? यह तो दूसरो के चढे हुए ऋण को चुकाना ही है।

—भाग ७ पृष्ठ २३८

६· छोटो की सेवा करने मे, सहायता करने मे और उनके दु खो को दूर करने मे ही वडो का वडप्पन है।

—भाग ७ पृष्ठ १४

७. भाइयो ! वडे और छोटे मे यही अन्तर है कि वडा आदमी किसी दुखियारे के दु ख का निवारण करने के लिए जी-जान मे प्रयत्न करता है। इसी मे उसका वडप्पन है। जो ऐमा नही करता वह वडा नही कहला सकता। दु ख तो वडा ही मिटा सकता। भिखारी का दु ख भिखारी नही मिटा सकता।

—भाग १५ पृष्ठ ११२

८. जिसने जीवो पर दया नही की, परोपकार नही किया ईश्वर का भजन नही किया, अप्टमी और चतुर्दशी को उपवास नही किया, शील नही पाला, दान भी नही दिया और व्यर्थ समय गँवा दिया वह जव इस पर्याय को त्याग कर जायगा तो सूने घर के पाहुने की तरह

दु ख पायेगा। अगर साथ मे पुण्य धर्म ले जायगा तो सुख पायेगा।

—भाग २ पृष्ठ ५१

६ परोपकारी पुरुष मरकर भी अमर रहता है क्योकि चाहे उसका हाड-माँस का शरीर विद्यमान न रहे परन्तु यश शरीर तो बना ही रहता है। अतएव ज्ञानी जनो का कहना है कि अपने भविष्य का विचार करो और परोपकार मे सलग्न हो जाओ।

—भाग १२ पृष्ठ ७१



पिता का सन्तान के प्रति कर्तव्य

आप अपने सन्तान का भविष्य अगर सुखमय बनाना चाहते हैं और चाहते हैं कि वे आपकी प्रतिष्ठा मे वृद्धि करे तो उन्हे धर्म शिक्षा से वचित मत रखना।

—भाग १० पृष्ठ २००

अगर आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान बुराइयो से बचे तो सबसे पहले आप स्वय बुराइयो से बचो। अगर आप सन्तान को न्यायनिष्ठ बनाने की इच्छा रखते है तो स्वय न्यायनिष्ठ बने। सारांश यह है कि जैसा आप व्यवहार करेगे वैसी ही सन्तान बनेगी। आपकी सन्तान पर आपके मौखिक उपदेश का उतना असर नही पडेगा, जितना आपके व्यवहार का पड़ेगा। इस बात को ध्यान मे रखकर आप चलेंगे तो आपका जीवन भी उन्नत बनेगा और आपकी सन्तान का भी भला होगा।

—भाग ७ पृष्ठ १६३

३ अगर माता-पिता अपने बालक को सुमार्गगामी बनाना

चाहते है, अगर वे उसे सदाचारी के रूप मे देखने की इच्छा रखते हैं, अगर आप अपने वालक को धर्मप्रिय और नीति-निष्ठ वनना चाहते है तो पहले आपको ऐसा वनाना चाहिए। इसके विपरीत यदि आप धर्म की वाते करके अधर्म का आचरण करेंगे, वच्चे को न्याय-नीति पर चलने का उपदेश देगे और स्वय अन्याय एव अनीति के मार्ग पर चलेगे तो बालक धर्मात्मा और न्यायी शायद ही वन सकेगा; हाँ वह यह ढोग करना अवश्य सीख लेगा कि धर्म की वाते करनी चाहिए और अधर्म का आचरण करना चाहिए।

—भाग ६ पृष्ठ ५

४ अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी सन्तान सभ्यतापूर्वक वोली वोलना सीखे, तो पहले तुम स्वय सभ्य वनो वच्चो को खराव रिवाज मत सिखाओ।

—भाग २ पृष्ठ ८४

५ जो स्वय प्रामाणिकता नही रखेगा, उनकी सन्तान मे भी प्रामाणिकता नही आ सकेगी। वेईमानी करना वाल-वच्चो को वेईमानी सिखाना है। पौधा जव कुछ वडा होता है तो उसे सीधा रखने के लिए वागवान

उसके एक लकडी वाँध देता है, इसी तरह अगर वालक को शुरू से ही सुधारना हो तो उसे सच्चाई और नीति की लकडी पकडा दो। ऐसा करने से वह नीति-निष्ठ और सच्चा वन जायगा।

—भाग २ पृष्ठ ८३

वगीचे मे वृक्ष रोपा जाता है तो उसकी चोकसी करनी पडती है। वह इधर-उधर न झुक जाय इस वास्ते उसके चारो ओर वाँस लगा देते है। तो क्या वच्चो का मूल्य वृक्ष से भी कम है? नही, तो फिर उनके इधर-उधर झुक जाने का ख्याल क्यो नही करते? वच्चो के इधर-उधर भी धर्मशिक्षा के वाँस लगाओ!

—भाग १ पृष्ठ २०१

७ तुम्हारा लडका—लडकी भाई-वहिन अथवा कोई और सम्वन्धी यदि वुरा काम करता है, तो उसे सहन मत करो, उसे तत्काल अच्छी नसीहत दे दो तो उसका आगे का जीवन आराम से निकलेगा ऐसा करने मे ही तुम्हारी और उसकी भलाई है।

—भाग २ पृष्ठ ८०



पितृ-सेवा

१. माता पिता का पुत्र पर इतना अधिक उपकार है कि उसका बदला नहीं चुकाया जा सकता। अतएव जब तक मनुष्य गृहस्थावस्था मे रहता है तब तक उसका यह परम कर्तव्य है कि वह पूर्ण रूप से माता पिता को सन्तुष्ट और सुखी रखने का प्रयत्न करे, उनके चित्त को क्लेश पहुँचाने वाला कभी कार्य न करे।

—भाग १४ पृष्ठ ३०५

२. पुत्र की सार्थकता यही है कि उसके भरोसे गृहस्थी छोडकर पिता निश्चिन्त भाव से धर्माचारण कर सकता है, जो पुत्र अपने पिता के धर्म-ध्यान मे सहायक होता है, वही सपूत है और उसी को पाना पुत्र लाभ को पाना है।

—भाग १३ पृष्ठ ६३

३. एक ही राजहस सरोवर की जितनी शोभा बढाता है उतनी चारो ओर मे सरोवर को घेरने वाले हजारो

वगुले भी नही वढा सकते। इसीप्रकार एक सुपुत्र कुल की शोभा मे जितनी वृद्धि करता है हजारो कपूत ऐसा नही कर सकते।

—भाग १२ पृष्ठ ३३

४. देखो, गधडी के कितने गधेडे उत्पन्न होते है मगर उसका लदना नही छूटता, इसीप्रकार अनेक पुत्र उत्पन्न हो गये किन्तु माता-पिता का भार हल्का न हुआ तो उनके उत्पन्न होने से क्या लाभ हुआ ?

—भाग १२ पृष्ठ ३३

५. सच है, जो वेटा सामर्थ्यवान होकर भी अपने माता-पिता की सेवा नही करता उसे पेट का कीडा समझना चाहिए। वह नरक का अधिकारी है।

—भाग १४ पृष्ठ ३०५

६. माता-पिता वुढापे की देन स्वरूप है, अनेक दु ख योही भोगते हैं, फिर ऊपर से भी अगर उनको कष्ट हो तो उनकी आत्मा को कितना सन्ताप पहुँचेगा। शारीरिक वेदना के साथ उन्हें मनोवेदना भी होगी और जीवन उनके लिए दुस्सह भार वन जायेगा। वे व्याकुल हो उठेंगे। अतएव मानवीय सामर्थ्य के अनुसार उनका

जितना दु ख सन्तान कम कर सकती है, उतना उसे करना ही चाहिए ।

—भाग १५ पृष्ठ १३६

७. आज्ञा बडी चीज है । बाप की आज्ञा मे बेटा रहे, गुरु की आज्ञा मे शिष्य रहे और तीर्थंकर की आज्ञा में समस्त श्रीसघ रहे तो उसका कल्याण होने मे विलम्ब नही लगता ।

—भाग १६ पृष्ठ २७०

महाजन

जव कोई भी जन महाजन कहलाता है तो उसमे साधारण की अपेक्षा कोई-न-कोई विशेषता होनी चाहिए, वह विशेषता रूप-रग या आकृति मे नही होती किन्तु कर्तव्य मे होती है। जिसके कर्तव्य महान है, जिसके जीवन मे चारित्र की विशेषता हैं वही महाजन पद का अधिकारी है।

—भाग १२ पृष्ठ २१

वडे आदमी के मस्तक पर कोई तिलक या पट्टे नही लगे होते। जिसके काम वडे होते हैं वही वडे आदमी कहलाते हैं। धन का विशाल भण्डार आदमी को वडा नही वना सकता। वडे-वड़े महलो से भी कोई वडा नही कहला सकता। वडप्पन मनुष्य के कामो मे है।

—भाग १८ पृष्ठ २२४

कपडा फाडने मे कितनी देर लगती है और उससे साधने मे कितना समय लगाना पडता है? काम

विगाडना चुटकियो का काम है । लायक वनाने मे अर्सा लगता है । नालायक वनने मे एक मिनिट की भी देर नही लगती । —भाग १५ पृष्ठ २४६

४ वडो का वडप्पन छोटो पर ही निर्भर है । अतएव अपने से छोटे-हीन प्राणियो को सुख-साता पहुँचाने मे ही वडो को अपने वडप्पन की सार्थकता समझनी चाहिए । —भाग १३ पृष्ठ ८८

५. ऐसा स्वामी किस काम का है जो अपने आश्रित जनो को अपना सरीखा न वना ले। जो स्वामी अपने आश्रित से लाभ उठाता है, किन्तु उसे अपने समान नही वनाता, वह स्वामी-स्वार्थी है। उससे आश्रित को कोई लाभ नही है। वडे आदमो को चाहिए कि वह अपने अधीनस्थ को अपने समान ही वना दे। ऐसा करने मे ही उसका वडप्पन है। इसी मे उसकी प्रतिष्ठा और शोभा है। —भाग ४ पृष्ठ २५८

६ महाजन वनने के लिए आचार-विचार और उच्चार की उच्चता प्राप्त करनी चाहिए। —भाग १ पृष्ठ ६०

७ आज लोगो की सर्वसाधारण नीति वन गई है कि व्यापार सिर्फ अर्थोपार्जन और स्वार्थ-साधन के लिए ही किया

जाता है। उसमे परोपकार के लिए कोई गुजाइश नही हैं। मगर यह धारणा भ्रमपूर्ण है। व्यापार को भी जनता की सेवा का साधन मानकर जो चले वही आदर्श व्यापारी कहलाता है। ऐसा व्यापारी अनुचित मुनाफा नही लेता, चीजो मे मिलावट नही करता, धोखा नही देता वल्कि प्रामाणिकता पूर्वक कार्य करता है।

—भाग १६ पृष्ठ २३१

८. भाइयो ! लोग कलम को कान मे लगाते हैं। तव मानो कलम व्यापारी के कान मे कहती है—देखो सेठ, न्याय नीति के अनुकूल बात लिखना, नही तो जैसे मेरा मुंह काला हुआ है वैसे ही तुम्हारा मुख भी काला हो जायेगा। सावधान रहना, कोई यह नही कहे कि फलाणचन्दजी ने मेरे गले पर छुरी चला दी इसलिए अपने वही-खातो आदि कागजात मे सत्य-सत्य लिखना। —भाग १ पृष्ठ १६१

९. सच्चा श्रावक कभी अन्याय से धन कमाने की इच्छा नही करता। श्रावक वनने की पहली शर्त 'न्यायोपात्त धन' है। न्याय नीति से धन कमाना ही श्रावक उचित समझता है। —भाग १ पृष्ठ १६१



भोजन

१. आज मनुष्यो की काफी दुर्बलता वढ गई है। इसका प्रधान कारण है भोजन सम्वन्धी असयम। लोग जिन्दे रहने के लिए नही खाते वरन् खाने के लिए जिन्दे रहते हैं। इस गलत धारणा से अधिक मिर्च मसाले वाला भोजन किया जाता है। उससे शरीर से जो पुष्टि मिलनी चाहिए वह नही मिलती वल्कि वह भोजन आयु की रस्सी को शिथिल करता है। वह रोगो का कारण वनता है और एक दिन प्राण हर लेता है। इस प्रकार आहार भी आयु के अपक्रमण का एक कारण है।

—भाग १२ पृष्ठ २५०

२. वहुत से लोग भोजन को जिह्वाइन्द्रिय की तृप्ती का सावन समझते है। वे लोलुपता के कारण स्वादिष्ट भोजन मिलने पर अपनी पाचन शक्ति का खयाल नही रखते और ठूंस-ठूंस कर खा जाते है। ऐसी स्थिति मे

जो भोजन प्राण-रक्षा का साधन है वही प्राणनाश का कारण बन जाता है।

—भाग १८ पृष्ठ २५०

जैसे थोडी-सी आग पर ज्यादा ईंधन रख दिया जाय तो वह बुझ जाती है, उसी प्रकार थोडी पाचन शक्ति पर अधिक भोजन का बोझ लाद दिया जाता है तो वह दब जाती है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी पाचन शक्ति को ठीक तरह समझे और उसके साथ बलात्कार न करे।

—भाग १८ पृष्ठ २५०

भोजन

१. आज मनुष्यों की काफी दुर्बलता बढ गई है। इसका प्रधान कारण है भोजन सम्बन्धी असयम। लोग जिन्दे रहने के लिए नही खाते वरन् खाने के लिए जिन्दे रहते हैं। इस गलत धारणा से अधिक मिर्च मसाले वाला भोजन किया जाता है। उससे शरीर से जो पुष्टि मिलनी चाहिए वह नही मिलती वल्कि वह भोजन आयु की रस्सी को शिथिल करता है। वह रोगो का कारण वनता है और एक दिन प्राण हर लेता है। इस प्रकार आहार भी आयु के अपक्रमण का एक कारण है।

—भाग १२ पृष्ठ २५०

२ वहुत से लोग भोजन को जिह्वाइन्द्रिय की तृप्ती का साधन समझते हैं। वे लोलुपता के कारण स्वादिष्ट भोजन मिलने पर अपनी पाचन शक्ति का खयाल नही रखते और ठूंस-ठूंस कर खा जाते हैं। ऐसी स्थिति मे

जो भोजन प्राण-रक्षा का साधन है वही प्राणनाश का कारण बन जाता है।

—भाग १८ पृष्ठ २५०

३. जैसे थोडी-सी आग पर ज्यादा ईंधन रख दिया जाय तो वह बुझ जाती है, उसी प्रकार थोडी पाचन शक्ति पर अधिक भोजन का बोझ लाद दिया जाता है तो वह दब जाती है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी पाचन शक्ति को ठीक तरह समझे और उसके साथ बलात्कार न करे।

—भाग १८ पृष्ठ २५०

मदिरा

१. जिन भले आदमियो को इहलोक और परलोक न विगाडना हो, समाज मे घृणा और नफरत का पात्र न वनना हो, धर्म से पतित न होना हो, अपने कुटुम्ब-परिवार वालो के लिए भारभूत और कालरूप न वनना हो, अपनी और अपने वाप-दादो की इज्जत को धूल मे न मिलाना चाहता हो, जो अपनी सम्पत्ति का स्वाहा न करना चाहता हो, और अपनी प्यारी सन्तान को सकटो के गहरे गड्डे मे न डालना चाहता हो, उसे मदिरा पान से सदैव दूर-वहुत-दूर ही रहना चाहिए। जो मनुष्य मोरियो मे पडा-पडा दुनियाँ का तिरस्कार ओढने से वचना चाहता है और अपने जीवन को सर्वनाश से वचाना चाहता है, उसे मदिरा पान की वुरी आदत को शुरू ही नही करना चाहिए।

—भाग ४ पृष्ठ ३६

२. शराव पीने की आदत पड जाने पर फिर छूटना वडा

कठिन हो जाता है। पहले तो मनुष्य कुसगति के फेर मे पडकर या कुबुद्धि के वशीभूत होकर शौक से मदिरा को अपनाता है फिर मदिरा उसके सिर पर सवार हो जाती है। वह वडी बुरी तरह वदला चुकाती है।

—भाग ४ पृष्ठ ३६

३. शराव के नशे मे पागल होकर लोग गली-कूचो मे गिर जाते हैं। गन्दी मोरीयो मे पडे-पडे अटसट वकते हैं। शरावियो की ऐसी दुर्दशा देखकर कौन भला आदमी शराव पीने की इच्छा करेगा ? शराव सौभाग्य रूपी चन्द्रमा के लिए राहू के समान है। लक्ष्मी और सरस्वती नष्ट करने वाली है।

—भाग १२ पृष्ठ २५३

४ यदुकुल और साथ ही द्वारिका का नाश करने वाली मदिरा ही तो है। लोक मे निन्दा, परलोक मे दु ख इसके प्रताप से होता है। शरावी का घर वर्वाद हो जाता है। दुनिया उसे घृणा करती है। कोई भला आदमी उससे वात भी करना पसन्द नही करता।

—भाग ७ पृष्ठ १६०

५. भाइयो ! मदिरा कभी काम मे मत लो, नहीं तो चेतनजी ! तुम हार जाओगे और पाप कर्म जीत जाएंगे। देखो, ठाकुरजी के अन्नकूट मे नशे की चीजें नही चढती। नाथद्वारे मे ५६ भोग नाथजी को चढाये जाते हैं मगर उसमे मदिरा नही होती। फिर न जाने क्यो और कैसे उनके भगत लोग मदिरा का सेवन करने लगे ?

—भाग ४ पृष्ठ ३७



भेद-विज्ञान

१. जीव अलग है और पुद्गल अलग है, वस यही असली तत्व की वात है, शेष सव इसी का विस्तार है ।

—भाग १६ पृष्ठ २५७

२. जीव अपने गुणो मे वलवान है और अजीव अपने गुणो मे वलवान है । अपना-अपना गुण और स्वभाव सव मे मौजूद हैं । शक्कर मे मिठास है, पुष्टि का गुण है और अफीम मे कडुवापन है तथा नशा उत्पन्न करने का गुण है । मगर अफीम का नशा अफीम मे नही आता, शक्कर अपने आपको पुष्ट नही करती । शराव को पीकर मनुष्य पागल वन जाता है पर, न शराव स्वय पागल वनती है और न जिस वोतल मे शराव भरी है वह वोतल नशे मे कूदती है । मगर जव मनुष्य और शराव का सयोग होता है तव तक तीसरी चीज—पागलपन की लहर पैदा हो जाती है । इसी प्रकार जड और चेतन के निमित्त मे इस ससार मे भाँति-भाँति के परिवर्तन होते है ।

—भाग ३ पृष्ठ २१८

३. शरीर का यह पिंड जड और चेतन के मेल से बना है। अकेले जड से या अकेले चेतन से ऐसा पिंड नहीं बन सकता। मकान की दीवार खडी करने के लिए ईंट पत्थर और चूना की आवश्यकता होती है। इसी तरह शरीर के निर्माण मे जड और चेतन दोनो की आवश्यकता होती है।

—भाग १ पृष्ठ १६

४ भाइयो! शरीर और चीज है, आत्मा और चीज है। शरीर आत्मा का बनाया हुआ मकान है। मकान का स्वामी आत्मा हैं। मकान और मकान का मालिक एक नही अलग-अलग होते है। तू इसे अपना आत्मा क्यो समझता है। शरीर और आत्मा का यह भेद-विज्ञान ज्ञान से उत्पन्न होता है।

—भाग १ पृष्ठ १७

५. जो वस्तु देखने-देखते पराई हो जाती है, उसे अपनी कैसे कहा जा सकता है। आत्मा जब परलोक से आया था तो साथ मे क्या लाया था? और जब जायेगा तो क्या लेकर जायेगा? ऐसी स्थिति मे किसी पदार्थ को अपना मानना, उसके लिए परेशान होना,

कष्ट पाना सयोग मे हर्ष और वियोग मे विषाद का अनुभव करना अज्ञान है, मूर्खता है।

—भाग १६ पृष्ठ १३१

जिसने जिसे अपना समझ लिया वह उसका कहलाने लगा, और जिसने जिसे पराया मान लिया वह पराया प्रतीत होने लगा। वास्तव मे तो आत्मस्वरूप से भिन्न कोई भी जगत की वस्तु अपनी हो ही नही सकती।

—भाग १८ पृष्ठ २७२

क्या आपका शरीर वास्तव मे ही आपका है ? उस पर आपका अधिकार है ? वह आपकी इच्छा के अनुसार चलता है ? आपने कब चाहा था कि उसमे रोग उत्पन्न हो जाय ? कब चाहा था कि यह दुर्बल हो जाय कब चाहा था कि मेरी इन्द्रियाँ शिथिल पड जाय ? कभी सोचा था कि सिर के बाल पक जाएँ तो अच्छा ! जो शरीर को त्याग कर चले गये है वे इच्छा मे गये हैं ? या अनिच्छा मे ? अगर इस शरीर पर आपका अधिकार है तो इसे अपनी इच्छा के अनुसार चलाकर

देखो न ! नही चलता तो कहना छोड दो कि यह हमारा है ।

—भाग १८ पृष्ठ १२३

८. आप अपनी कल्पना के द्वारा परकीय पदार्थों को अपना समझ लेते हैं यह वडा भारी भ्रम है, और यही भ्रम अपनी समस्त आपत्तियो का प्रधान कारण है । धन-जन-मकान-दुकान आदि दूर की चीजो को छोडिए और सिर्फ अपने शरीर पर ही विचार कीजिए क्योकि वह सव वस्तुओ की अपेक्षा निकट है ।

—भाग १७ पृष्ठ १२३

९. अगर शरीर से जुदा आत्मा नही हैं और शरीर ही शरीर है तो मृतक अवस्था मे सव क्रियाएँ क्यो वन्द हो जाती है ? इससे पता चलता है कि शरीर के कारण ही पूर्वोक्त सव क्रियाएं नही हो रही थी । ऐसा होता तो शरीर तो मृतक अवस्था मे मौजूद ही है फिर सव क्रियाएँ वन्द क्यो हो जाती । अतएव यह निश्चित होता है कि शरीर अलग और आत्मा अलग है ।

—भाग १ पृष्ठ २०

१०. भव्य जीवो ! अपने मानव भव को सफल और सुफल

वनाना हो तो सर्वप्रथम शरीर और उसमे रहे हुए आत्मा के पार्थक्य को समझो और उस पर दृढ आस्था जमाओ। आत्मा न कभी जनमता है और न कभी मरता है। ऐसी सुदृढ प्रतीति जिसके अन्त करण मे वद्धमूल हो जायगी वह आत्म-हित के लिए अवश्य प्रयत्न करेगा। वह अल्पकाल स्थायी शरीर के सुख के लिए अपने अनन्त आत्मिक सुख की उपेक्षा नही करेगा।

—भाग ८ पृष्ठ ४१

११. दूध और पानी जव एकमेक होते हैं तो पानी भी दूध की शक्ल मे दिखाई देता है। मगर जव उसी दूध मे हस अपनी चोच डुवोता है तो दूध अलग और पानी अलग हो जाता है। वह दूध-दूध पी लेता है और पानी-पानी छोड देता है। ठीक इसीप्रकार शरीर और आत्मा एकमेक हो रहे हैं, फिर भी ज्ञानी जन लक्षण के भेद से दोनो को भिन्न-भिन्न समझते हैं। सिर्फ अज्ञान जन ही दोनो को एक मानते है।

—भाग १ पृष्ठ २६

१२. जैसे हीरा मिट्टी मे दवा होने के कारण प्रकाशित नही

हो रहा है इसी प्रकार आत्मा स्वभावत प्रकाशमय होने पर भी कर्मों के कारण प्रकाशमान नही हो पाता है। जैसे धूल उडकर जब शरीर पर चिपक जाती है तब वह मैल कहलाती है लेकिन शरीर और मैल एक चीज नही है। शरीर से अलग हो जाने पर शरीर-शरीर है और धूल-धूल है। दोनो का सयोग हो जाता है, फिर भी दोनो की मूल सत्ता अलग-अलग है।

—भाग ३ पृष्ठ १२६

१३ जैसे म्यान और तलवार अलग-अलग है, उसी प्रकार शरीर और आत्मा सर्वथा भिन्न पदार्थ है। इस बात को प्रत्येक आस्तिक जानता है। फिर भी मोह की महिमा ऐसी है कि लोग शरीर मे आत्म-बुद्धि स्थापित कर लेते है और शरीर के कष्ट को आत्मा का कष्ट मान लेते है। मगर महात्मा पुरुषो की भावना कुछ निराली ही होती है। जब कोई शारीरिक कष्ट आता है तो वे अपनी आत्मा के स्वरूप मे अवगाहन करते हैं और देहाध्यास से ऊपर उठकर अपने समभाव को कायम रखते हैं।

—भाग ४ पृष्ठ ११८

१४ ससार की कोई भी वस्तु आत्मा से अभिन्न नही है। कोई भी मरने वाला अपने साथ न इच भर भूमि ले जा सकता है, न कानी कौडी ले जा सकता है, न किसी सम्वन्धी रिश्तेदार को ले जा सकता है। जव कुछ भी नही ले जा सकता है तो कैसे वह उसकी चीज समझी जा सकती है।

—भाग ५ पृष्ठ १३५

१५. तुम स्वय जो हो सो हो। तुम्हारे आत्म-स्वरूप के अतिरिक्त जितने भी दूसरे पदार्थ हैं, वे सव पर-पदार्थ है। धन सम्पत्ति आदि जड पदार्थ, माता, पिता, पुत्र, पत्नी आदि चेतन पदार्थ सव पराये हैं। तुम्हारा शरीर भी तुम्हारा नही पर-पदार्थ हैं। यहाँ तक कि तुम्हारे आत्म-प्रदेशो के साथ एकमेक होकर मिले हुए कार्मण वर्गणा के परमाणु और उनसे उत्पन्न होने वाले विभाव परिणाम भी पर-पदार्थ है। पर-पदार्थों मे अपनेपन की जो भावना है वही समस्त दुखो का प्रधान और मूल कारण हैं। दुखो से छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि आप अपने अपनेपन के भाव को अपनी आत्मा तक ही सीमित कर ले। अगर आपने पर-

पदार्थों को पर समझ लिया और पक्की निष्ठा बना ली तो जगत की कोई भी शक्ति तुम्हे दु खी नही बना सकेगी।

—भाग ५ पृष्ठ १३४

१६ जीवन को सुखमय और शान्तिपूर्ण बनाने के लिए ज्यो-ज्यो बाह्य-पदार्थों को अपनाया जाता है, त्यो-त्यो सुख मृगतृष्णा सिद्ध होता है और शान्ति, घोर अशाति के महासागर मे विलीन हो जाती है। असल मे पर-पदार्थों का सयोग ही दु खो की अनवच्छिन्न परम्पराओ को प्रसव करता है और ससारी जीव इस तथ्य को यथार्थ रूप मे न समझकर और विपर्यस्त बुद्धि होकर दु खो के मूल उन पदार्थों को ही सुख साधन के रूप मे ग्रहण करता है। फलस्वरूप उनकी बदौलत और नवीन दु खो की सृष्टि हो जाती है। इस प्रकार ससारी जीव के सुख-प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्न दु खो के जनक सिद्ध होते जाते हैं। इस प्रकार ज्यो-ज्यो औषध की जाती है, रोग बढता ही चला जाता है, क्योकि रोग का निदान और उपचार सही नही होता।

—भाग १३ पृष्ठ ८८

१७ कितने ही लोग धन-सम्पत्ति की प्राप्ति मे सुख समझते है, कोई-कोई कुटुम्व परिवार के सयोग मे सुख समझते है। ,कोई राजपाट आदि वैभव मे सुख की कल्पना करते हैं। इस प्रकार जिसने जिस वस्तु मे सुख मान् लिया है वह उसी के सयोग के लिए दिन रात व्यग्र वना रहता है। मगर ससार का अनुभव वतलाता है कि यह सव भ्रमपूर्ण धारणाएँ है, किसी भी पर पदार्थ से वाह्य वस्तु मे सुख की प्राप्ति नही होती। यही नही पर-पदार्थ दु ख के कारण ही वनते हैं। ज्यो-ज्यो पर पदार्थ का सयोग साधा जाता है त्यो-त्यो दु ख की मात्रा वढती ही चली जाती है। यही कारण है कि जिन ज्ञानवान पुरुपो को सुख का वास्तविक स्वरूप ज्ञात हो गया हो, वे पर-पदार्थो के सयोग से वचने का ही प्रयास करते हैं। —भाग १० पृष्ठ ४८

१८ जव तू समझ जायेगा कि मैं किसी का नही हूँ और कोई मेरा नही है तो तेरे चित्त मे एक अनोखा भाव, एक प्रकार की अनोखी निश्चिन्तता, शान्तिदायिनी मस्ती उत्पन्न हो जायगी। फिर संसार का कोई भी सयोग वियोग तुझे दुखी नही वना सकेगा।—भाग ५ पृष्ठ १२०

१९. इस भूतल पर जितने भी ज्ञानी महापुरुष हो चुके हैं, उन सबने एक स्वर से एक ही बात कही है कि जितना-जितना पर-पदार्थों से सम्बन्ध हटता जायेगा उतना ही उतना सुख प्राप्त होता चला जायगा और ज्यो-ज्यो दुनिया के पदार्थों के साथ सम्बन्ध बढेगा त्यो-त्यो दु ख बढेगा। बात यह है कि आकुलता दु ख है और निराकुलता सुख है। पर-पदार्थों के साथ सम्बन्ध त्याग देने से आकुलता का दूर हो जाना ही सुख है।

—भाग १ पृष्ठ २३६

२० जिसने अपने जीवन मे धैर्य का आचरण किया है जिसका जीवन नीतिमय व्यतीत हुआ है, जिसने नाना प्रकार के व्रतो-नियमो और शीलो का आचरण किया है, वह मृत्यु के सन्निकट आने पर व्याकुल नही होता। शरीर के छुटने का उसे भय नही होता। वह अपने जीवन मे शरीर और आत्मा की भिन्नता की भावना करता रहता है। शरीर को भिन्न समझता रहा है। अतएव जब शरीर आत्मा से जुदा होने लगता है तो वह किसी प्रकार का खेद नही करता। क्योकि शरीर

के प्रति उसकी ममता नही होती। बल्कि ज्ञानी पुरुष तो मृत्यु को अपना मित्र ही मानते है।

—भाग ५ पृष्ठ २२२

२१ जो अपनी शक्ति को न पहचानकर परायी शक्ति पर विश्वास करता है, वह किसी महान कार्य मे कभी सफलता प्राप्त नही कर सकता। वह अपग है। वह अपनी आत्मा का अपमान करता है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह पराई आशा छोडकर अपने बल पर भरोसा करे। उसे उपयोग मे लावे और सुखी बने।

—भाग १५ पृष्ठ ७२

२२. अपना उद्धार आपसे ही करना चाहिए। दूसरो की सहायता के भिखारी बनकर तुम उठ नही सकते। दीनता अपने आप मे पतन है। पतन से उत्थान नही होगा।

—भाग १३ पृष्ठ १२८



पुण्य

१. पुण्यवान पुरुष अपनी प्रत्येक शक्ति का उपयोग दूसरो का कल्याण करने मे ही है जब कि पामात्मा की शक्तियाँ स्व" के अहित मे निहित होती है।

—भाग ३७ पृष्ठ १२

२ दीपक जहाँ कही जाता है, वही उजेला करता है। इमी प्रकार पुण्यवान भी जहाँ जाता है वहाँ-उजेला हो जाता है। जहाँ पुण्यवान पुरूप का पादन्याम होता है, वहाँ नव-निधान का निर्माण हो जाता है। पापी उसे हाथ लगा दे तो सोना भी मिट्टी बन जाता है।

—भाग १० पृष्ठ १२३

३ पाप करके पुण्य के फल की आकाक्षा करोगे तो वह नही मिलेगा। बबूल बोकर आम के फल की आशा

करना व्यर्थ ही नहीं, मूर्खता भी है। पुण्य का फल पुण्य करने से ही प्राप्त होगा।

—भाग १३ पृष्ठ १६

४. गेहूँ की रोटी खाना तो सब चाहते हैं लेकिन उन्हे उत्पन्न करना, लाना, पिसाना और रोटी बनाना सबको कठिन मालूम होता है। लेकिन जैसे मेहनत किये बिना रोटी नही मिलती। उसी प्रकार पुण्य का उपार्जन किये बिना पुण्य का फल नही मिल सकता।

—भाग ४ पृष्ठ २०६

५. दु ख उत्पन्न करने वाले कार्य करके सुख पाने की चेष्टा करना वैसे ही है जैसे नमक खाकर मुँह मीठा करने की इच्छा करना। ऐसे लोगो की इच्छा कभी नही पूर्ण हो सकती। जिसे सुखी होना है उसे सुखरूप फल देने वाले शुभ कार्य करने होगे।

—भाग १० पृष्ठ ३६

६ ज्योतिष शास्त्र मे कई ग्रह माने जाते हैं, पर यो देखा जाय तो दो ही ग्रह है—पापग्रह और पुण्यग्रह। जिसने पुण्यग्रह नही कमाया उसके ग्रह अच्छे नही है, यानि पापग्रह है। ऐसा समझना चाहिए। —भाग ७ पृष्ठ ११३

७ तू रात और दिन पापो का उपार्जन किया करता है, पुण्य को ठोकरे मारता जा रहा है, धर्म की ओर ध्यान नही देता, जिसकी वदोलत आराम से जिन्दगी व्यतीत हो रही है और चैन की वशी वजा रहा है ! जिसने उपकार किया हो उसी को ठोकर मारने वाले से अधिक कृतघ्न और कौन होगा ? जिस दान-पुण्य ने तुझे मालदार वनाया है, आज उसी से वचकर रहना चाहता है ?

—भाग ४ पृष्ठ २११

८. प्रत्येक कार्य के दो कारण होते हैं—वहिरग कारण और अन्तरग कारण । दोनो जव मिल जाते हैं तभी कार्य करना चाहिए । अमीरी और गरीवी मे भी दोनो कारणो का विचार करना चाहिए । इसका वाह्य कारण अगर सामाजिक है तो अन्तरग कारण पुण्य-पाप भी है ।

—भाग ३ पृष्ठ ४३

९ अरे भाई, तू प्रथम श्रेणी के डिब्वे मे बैठना चाहता है, लेकिन उसका टिकिट लेने के लिए पूंजी नही लगाना चाहता तो वावू तुझे कैसे बैठने देगा ? इसी प्रकार तू

स्वर्ग-मोक्ष की लालसा करता है, परन्तु उनकी प्राप्ति के लिए पुण्य-धर्म करना नही चाहता, तो क्या, सिर्फ बाते वनाने से ही तू वहाँ पहुँच जायेगा।

—भाग ४ पृष्ठ २१०

१० सुख और सम्पत्ति तो पुण्यरूपी वृक्ष के फल है। आप सुख सम्पत्ति चाहते हैं तो पुण्य का उपार्जन करना होगा। सत्कार्य करके, दया, दान, परोपकार करके दीन दुखियो की सेवा और सहायता करके पुण्य का उपार्जन किया जा सकता है। इस प्रकार जव आप पुण्यरूपी वृक्ष का आरोपण करेंगे, और वह बढेगा तो अपने आपको उसके मधुर फल की प्राप्ति होगी।

—भाग १ पृष्ठ १४२

११ पुण्य और पाप छाया की तरह प्रत्येक प्राणि के साथ रहते है। कोई मनुष्य लालटेन हाथ मे लेकर चलता है तो उजेला साथ-साथ चलता है इसी प्रकार पुण्य-वान के साथ-साथ लक्ष्मी चलती है।

—भाग १५ पृष्ठ ३६

१२ जिसके पास धन है वह धन का दान करके पुण्य उपार्जन कर सकता है। जिसके पास धन नही, वह मन

से भी पुण्य कमा सकता है। मन से प्रशस्त विचार रखने से, दूसरो का हित विस्तृत करने से, धर्मनिष्ठ पुरुषो की सराहना से गुणगान करने से भी पुण्यो का सचय होता है।

—भाग १४ पृष्ठ २२१

१३ पुण्य का उपार्जन करो और उस पुण्य के सहारे आत्म-शुद्धि करके मुक्ति की ओर वढो। खाली थैला रखना उचित नही है। जो गाँठ की पूंजी उडा देता है और उससे नवीन पूंजी नही वनाता वह ससार मे भी कपूत गिना जाता है। भाइयो! तुम वीतराग प्रभु की सतान हो। तुम्हें सपूत वनना चाहिए। पूर्वोपार्जित पूंजी को वढाना चाहिए।

—भाग ४ पृष्ठ २२०

४१ अपने हृदय को निर्मल और उदार वनाओ। अपने स्वार्थ को छोड सको तो छोड दो। अपना स्वार्थ न छोड सको तो कम-से-कम अपने स्वार्थ के लिए दूसरे के स्वार्थ का घात मत करो।

—भाग ५ पृष्ठ ६६

१५ यद्यपि उच्च श्रेणी पर पहुँचने के पश्चात पुण्य का भी

क्षय होता है, किन्तु प्रारम्भ मे तो वही हितकारी है, क्योकि मनुष्य-जीवन भी पुण्य का ही फल है और वह न मिले तो आत्मा का कल्याण ही कैसे हो ?

—भाग १२ पृष्ठ ३८

१६ आपके दो हाथ है। इनसे आप चाहे तो किसी गिरते को बचा सकते है और चाहे तो धक्का देकर गिरा सकते हो। आपके दो आँखें है। इनसे शास्त्रो का अवलोकन भी कर सकते है, सन्तो का दर्शन भी कर सकते है और भी शुभ कार्य कर सकते है और यदि चाहे तो परस्त्री पर खोटी दृष्टि डालकर पाप का सचय भी कर सकते हैं। आपको यह सब साधन पुण्य के योग से मिले हैं। आपकी इच्छा है इनसे चाहे पुण्य का उपार्जन कीजिए, चाहे पाप का।

—भाग १२ पृष्ठ ३८



प्रतिक्रमण

१ अगर प्रतिदिन घर मे झाडू न लगाई जाय तो कूडा-कचरा जम जाता है और विच्छू वगैरह पैदा हो जाता है, उसी प्रकार प्रति-दिन प्रात'काल और सायकाल अगर प्रतिक्रमण न किया जाय तो आत्मा मे मलीनता छा जाती है। प्रतिदिन सफाई करने से कचरा जमने नही पाता और मकान साफ-सुथरा रहता है इसी प्रकार प्रतिदिन प्रतिक्रमण करने से आत्मा निर्मल रहता है।

—भाग ४ पृष्ठ १३४

२ जैसे दिनभर कपडो पर धूल जमती रहती है और शाम को उन्हे साफ कर लिया जाता है तो वह मलिन कपडा निर्मल हो जाता है, उसीप्रकार प्रतिक्रमण करने से पापो का मैल हट जाता है।

—भाग ४ पृष्ठ १३४

३ जव आपका कपडा किसी जगह से फट जाता है तो

आप दर्जी के पास जाकर उसे ठीक करवा लेते है। ऐसा न किया जाय तो वह शीघ्र ही बेकाम हो जाता है। इसी प्रकार सावधानी और विवेक के साथ व्यवहार करते-करते भी दोष लग जाय तो लोग-लज्जा या वडप्पन चले जाने के डर से उसे कभी छिपाना नही चाहिए। अपनी आत्मा को नि शल्य और पवित्र रखना चाहते हो तो जिस समय भूल हो उसी समय प्रायश्चित कर लो। उसे उधार मत रखो।

—भाग ४ पृष्ठ १२८

४ कृत-पापो के लिए प्रायश्चित करना उचित हैं पश्चाताप भी करना चाहिए। मगर यह सब इसलिए कि आत्मा मे पुन पाप न करने की प्रेरणा पैदा हो और पाप करने का प्रसग उपस्थित होने पर भी आत्मा की प्रवृत्ति पाप मे न हो। इसी प्रकार पापो से दूर रहने की दृढता प्राप्त करना ही पश्चाताप का प्रयोजन है। सिर्फ आँसू वहाने से पाप नही धुल सकता।

—भाग २ पृष्ठ १८

५ भाइयो ! ऊपर चढने के लिए प्रयत्न करना पडता है

नीचे गिरना तो आसान है। अच्छाई सीखना कठिन हैं, बुराई अपने आप ही आ जाती है। वहिनो को सामायिक प्रतिक्रमण याद नही होता। मगर तरह-तरह के गीत कैसे याद हो जाते हैं ?

—भाग १२ पृष्ठ १७४

मोह-ममता

१ भाइयो ! आप लोग आज स्वप्न दशा मे हैं। मोह निन्द्रा मे मस्त हो रहे हैं। मेरा कुटुम्ब, मेरा परिवार मेरा धन मेरा मकान मेरी दुकान आदि जो सकल्प आपके चित्त मे उत्पन्न होते हैं यह सब स्वप्न हैं। मगर आप इन्हे स्वप्न नही समझ रहे हैं, क्योकि आप मोह की नीद मे मग्न है। जिस दिन आपकी मोह निन्द्रा भग होगी, असलीपन चमक उठेगी आप समझ जायेगे कि यह सब विचार और ख्याल झूठे थे।

—भाग ५ पृष्ठ १४२

२ आँखो पर जिस रग का चश्मा चढा लिया जाय वैसे ही रग की सब वस्तुएँ दीख पडने लगती है। इसी प्रकार मोह के निमित्त से जैसी आन्तरिक दृष्टि बन जाती है वैसी ही पदार्थों का स्वरूप प्रतिभाषित होने लगता है।

—भाग ६ पृष्ठ २३३

नीचे गिरना तो आसान है। अच्छाई सीखना कठिन हैं, बुराई अपने आप ही आ जाती है। बहिनो को सामायिक प्रतिक्रमण याद नही होता। मगर तरह-तरह के गीत कैसे याद हो जाते हैं ?

—भाग १२ पृष्ठ १७४

•

रखा है, उसके पीछे उतने ही ज्यादा ग्रह् लगे हुए हैं। मगर मोह के कारण लोग इस सचाई को समझते नही है। इस कारण वे दु ख से बचने की इच्छा रखते हुए भी दु खो से बच नही सकते। यही नही, तथ्य तो यह है कि उसके समस्त प्रयास विपरीत फल देने वाले साबित होते हैं।

—भाग ५ पृष्ठ ११२

५. ससार मे जितने भी पाप कर्म होते है, उन सबका प्रधान कारण मोह ही है। अतएव पाप कर्मो से बचने के लिए मोह का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है।

—भाग ६ पृष्ठ ७५

६. आसक्ति मोह या ममता का भाव, चाहे वह शरीर के प्रति हो, भोगोपभोगो के प्रति हो या धन-सम्पत्ति अथवा कुटुम्ब परिवार के प्रति हो विपत्ति का ही कारण है। ममता सन्ताप की जननी है। उससे कभी किसी को शान्ति नही मिली और न ही मिल सकती।

—भाग १० पृष्ठ २५०

७ मोह के झपटे मे आने से बचना बडा मुश्किल है। सच पूछो तो जीव को ससार मे भटकाने वाला उसे

३. जैसे मदिरा पीने वाला मनुष्य नशे मे होकर भूल जाता है कि यह मेरी माता है, या पुत्री है, अथवा पत्नी है, इसी प्रकार मोह के नशे मे मस्त ससारी जीव भी भान भूल रहा है। इसे खबर ही नही कि मुझे आगे भी जाना है। जिसे आगे जाने का ख्याल होगा—परलोक की यात्रा करने का ख्याल होगा, वह धर्मोपार्जन से विमुख नही रह सकता उसे साथ मे कुछ खर्च ले जाने की आवश्यकता होगी।

—भाग १४ पृष्ठ २७२

४. दु खो का कारण लोग कहते है ग्रह है। वास्तव मे उनका कहना सत्य है। मगर वे यह नही जानते कि ग्रह क्या चीज है? ग्रह का अर्थ है पकडना। जिसे आपने अपना मानकर ग्रहण कर लिया है—जिस पर आपने अपनी आत्मीयता स्थापित कर ली, वही आपके लिए ग्रह बन गया? इस प्रकार घर कुटुम्ब-परिवार धन-दौलत आदि जितने भी पदार्थ है, सब ग्रह हैं और सभी आपको व्यथा पहुँचाने वाले हैं। यह सुखदायी प्रतीत होने वाले पदार्थ ही वास्तव मे दुखदायी है। अतएव जिसने जितने ज्यादा पदार्थों को ग्रहण कर

रखा है, उसके पीछे उतने ही ज्यादा ग्रह लगे हुए हैं। मगर मोह के कारण लोग इस सचाई को समझते नही है। इस कारण वे दु ख से वचने की इच्छा रखते हुए भी दु खो से वच नही सकते। यही नही, तथ्य तो यह है कि उसके समस्त प्रयास विपरीत फल देने वाले सावित होते हैं।

—भाग ५ पृष्ठ ११२

५. ससार मे जितने भी पाप कर्म होते हैं, उन सबका प्रधान कारण मोह ही है। अतएव पाप कर्मो से वचने के लिए मोह का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है।

—भाग ६ पृष्ठ ७५

६. आसक्ति मोह या ममता का भाव, चाहे वह शरीर के प्रति हो, भोगोपभोगो के प्रति हो या धन-सम्पत्ति अथवा कुटुम्ब परिवार के प्रति हो विपत्ति का ही कारण है। ममता सन्ताप की जननी है। उससे कभी किसी को शान्ति नही मिली और न ही मिल सकती।

—भाग १० पृष्ठ २५०

७ मोह के झपटे मे आने से वचना वडा मुश्किल है। सच पूछो तो जीव को ससार मे भटकाने वाला उसे

अपने असली रूप से च्युत करने वाला अपने आपको पहचानने मे भ्रम उत्पन्न करने वाला, नाना प्रकार के विकारो और वासनाओ को जन्म देने वाला, विवेक को नष्ट करके अविवेक को उत्पन्न करने वाला, आत्मा की शान्ति को भग करके कपाय भावना को जगाने वाला कहाँ तक कहे, आत्मा के अनन्त सुख से वचित करके दु खो के अन्धकूप मे पटकने वाला और जन्म जन्मान्तर मे रुलाने वाला राजा से रक वनाने वाला यह मोह कर्म है ।

—भाग २ पृष्ठ १६१

८. मानव मोह-माया मे फँसकर धर्म का नाम भी नही लेता है, दुनियादारी के कामो मे चौबीस घण्टे लगाता है और धर्म क्रिया के लिए एक घडी भी फुरसत नही पाता । इसी कारण तो जीव चार गति चौवीस दण्डक और चोरासी लाख जीव-योनियो मे भटकता रहता है । सद्‌गति प्राप्त करना कठिन हो रहा है ।

—भाग ४ पृष्ठ ७६

९ ममता और उसमे फिर क्षुद्र ममता से कितने अनर्थ होते हैं, यह तो प्रत्यक्ष देख सकते हो । घर मे देवरानी

और जेठानी मे खटकती रहती है सास और बहु मे जग छिडा रहता है, भाई भाई मे मनमुटाव रहता है, इस सबका कारण क्षुद्र ममता ही तो है। ममता के बदले अगर समता आ जाय तो सारे झगड़े उसी समय समाप्त हो जाय। अतएव ममता के स्थान पर समता को धारण करो, जिससे मनगमता आनन्द मिले और आत्मा मे अनन्त क्षमता आ जाय।

—भाग ५ पृष्ठ २१

१०. मोह का आधिक्य अपने प्रेम पात्र के प्रति नाना प्रकार की अनिष्ट कल्पनाओ को जन्म देता है। मोह की अधिकता के कारण चित्त मे सदैव अशान्ति रहती है। इसलिए तो ज्ञानी पुरुषो का आदेश और उपदेश है कि मोह को जीतो। जितने-जितने अशो मे मोह ममता क्षीण होती चली जायगी, उतने अशो मे जीवन शक्तिमय और सुखमय बनता जायगा। इस प्रकार न केवल पारलौकिक सुधार के लिए ही मोह को जीतना उपयोगी है अपितु जीवन को सुख शान्ति के लिए भी आवश्यक है।

—भाग ८ पृष्ठ ८७

११. मोह का पर्दा ऐसा पडा हुआ है कि लोग सत्य को प्रत्यक्ष देखते हुए भी भूले से रहते है। जैसे कांच मे अपना ही प्रतिविम्ब देखकर मुर्गा समझता है कि कोई दूसरा मुर्गा है और उससे लडता है। इसीप्रकार के भ्रम मे आप भी पडे हुए है। आप समझते हैं कि दुनिया के पदार्थ मेरे हैं—छोरा छोरी आदि मेरे है, मगर आँख मिचते ही सव विराने वन जाते हैं। यहाँ कोई किसी का नही है। सव अपने-अपने कर्मों के अनुसार आये है और अपने-अपने कर्मों के अनुसार जायेगे। उनके साथ आत्मीयता का सम्वन्ध स्थापित करना बुद्धिमत्ता नही है।

—भाग ३ पृष्ठ २०१

१२. भाइयो ! जगत मे ममता का वन्धन ही प्रवल वन्धन है। ममता ही समस्त विपत्तियो का मूल है। ममता के कारण ही नाना प्रकार के दु ख मनुष्य को दु:खी वनाते है, दूसरो का लडका मर जाता है तो कोई नही रोता, क्योकि उस पर ममता नही है। उसे अपना नही माना है और जिसे अपना माना है उसके मर जाने पर रोये विना नही रहा जाता। तो फिर क्यो नही

समझ लेता कि यह अपनेपन का भाव ही दु ख और शोक का मूल कारण है। इसे हटा दे। ममता के आवरण को दूर कर। फिर सारे झझट आप ही आप दूर हो जाएँगे।

—भाग ५ पृष्ठ १२०

१३ दुनिया के सारे दु ख ममता-मूलक हैं। जिसने किसी भी पदार्थ को अपना नही माना है उसे कोई भी दु ख नही। कोई भी पदार्थ नष्ट हो या वना रहे, उसकी बला मे। उसे किसी से कोई मतलव नही। वह अपनी आत्मा के एकत्व को देखता है और जानता है कि आत्मा अद्वितीय है, एकाकी है और इस विराट सृष्टि मे उसका किसी से कोई सरोकार नही है।

—भाग १६ पृष्ठ १३१

१४ दुख से वचने का और सुख प्राप्त करने का एक ही मार्ग है और वह यही कि आप पर-पदार्थों के प्रति ममत्व धारण न करे। दुनिया की किसी भी चीज को अपनी न समझे। जिसे आप अपना समझते हैं उसे अपना समझना छोड दे। क्योकि वह वास्तव मे आपका है ही नही। जो आपका है वह आप से कभी

अलग नही हो सकता और जो कभी अलग हो जाता है वह आपका नही है ।

—भाग ५ पृष्ठ ११५

१५ सुखी बनने के लिए, चिन्ता और शोक से बचने के लिए ममता का त्याग करना आवश्यक है । ज्यो-ज्यो आप ममत्व भाव के दायरे को छोटा करते जायेंगे त्यो-त्यो आपके शोक एव दु ख के कारण घटते चले जायेंगे। मुनि जनो को चिन्ता और शोक का सामना क्यो नही करना पडता ? इसी कारण कि वे ससार के किसी भी पदार्थ पर ममता नही रखते । यहाँ तक कि वे अपने शरीर को भी अपना नही समझते ।

—भाग ५ पृष्ठ ११४

१६ जगत के पदार्थों से जब आत्मीयता की भावना हट जाती है तो चित्त मे लघुता का भाव उत्पन्न होता है और जितनी-जितनी लघुता बढती जाती है, उतनी ही उतनी निराकुलता बढती जाती है । ज्यो-ज्यो निरा-कुलता बढती जाती है त्यो-त्यो सुख की वृद्धि होती है इस प्रकार आत्मा जब परिपूर्ण रूप से वीतराग बन जाता है, अर्थात विश्व के किसी भी पदार्थ पर उसका

ममत्व शेष नही रह जाता तभी उसको परिपूर्ण सुख की अनन्त अक्षय अव्याबाध सुख की उपलब्धि होती है ।

—भाग १० पृष्ठ ४६

१७ ममता की क्रिया और चक्रवर्ती की अविरती की क्रिया बराबर है । ममता वाले को जो पाप आ रहा है वही चक्रवर्ती को भी आ रहा है । वह छह खण्ड का राजा है और यह गरीब है । इतना फर्क होने पर भी ममता की तीव्रता के कारण वह इतने बडे पाप का भागी होता है ।

—भाग १६ पृष्ठ २१८

१८ भाईयो ! गौतम स्वामी चार ज्ञान के धनी परमोत्कृष्ट तपस्वी और ध्यानी थे । इन्हे भगवान के ऊपर प्रशस्त मोह था, इस मोह के कारण भी जब वे केवलज्ञान प्राप्त न कर सके तो जगत के जड पदार्थों पर ममता रखने वालो का कैसे कल्याण होगा । वास्तव मे यह मोह आत्मा का बडा बलवान बैरी है । इसे जीते बिना आत्मा का कल्याण नही हो सकता ।

—भाग १२ पृष्ठ २७८

१९ आठो कर्मों मे मोहनीय कर्म सबसे जबर्दस्त है । वह

कर्मो का राजा है। राजा के मारे जाने पर सेना नही टिकती, वह तुरन्त भाग खडी होती है। इसी प्रकार मोह के नाश होने पर दूसरे सभी कर्मो का नाश होने मे देर नही लगती।

—भाग १ पृष्ठ ६

२०. मोह की महिमा प्रवल है, मगर आत्मा की शक्ति प्रवलतर है, मोह आत्मा को जीत सकता है, तो आत्मा भी मोह को नष्ट कर सकता है।

—भाग १ पृष्ठ २२

२१ हृदय मे ममता व्यापी हुई है उसमे सुमति का प्रवेश नही हो पाता। सुमति का प्रवेश न होने पर समता भी नही आती। कुमति ममता की जननी है और सुमति समता की जननी है। जहा कुमति का राज्य है, वहाँ वेचारी समता को कहाँ जगह है।

—भाग ८ पृष्ठ २१५

२२. ममता के कारण ही जीव चतुर्गति रूप ससार मे भ्रमण करता है। ममता को मारने के लिए ममता की आवश्यकता है।

—भाग १० पृष्ठ २५०

२३ प्रत्येक मनुष्य दूसरो की परिस्थिति मे सुख समझता

है और वह स्वय जिस स्थिति मे है उसे दुःख पूर्ण मानता है। इस विषय मे गहराई से विचार करेंगे तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि सभी दुःख का शिकार हो रहे हैं। किसी को सुख नही, शान्ति नही, सन्तोष नही। तत्वज्ञानी पुरुष इस रहस्य को सम्यक् प्रकार से समझते हैं। इसी कारण वे ससारी जीवो के दुःख से द्रवित होकर उन्हे सावचेत करते हैं और मोह की नीद से जगाते हैं।

—भाग १२ पृष्ठ ८५

वाणी

१ मोती चाहे लाख रुपये का हो, लेकिन टूट जाने के बाद फिर वह नही जुड सकता। इसीप्रकार मन टूट जाने पर नही जुडता। गाली देने से या कटुक वचन कहने से आदमी का दिल ऐसा फूट जाता है कि फिर आँख से आँख मिलाने भी मुश्किल हो जाता है। बाद मे कटुक वचन बोलने वाला भी पछताता है। मगर जब तीर हाथ से छूट गया हो तो बाद मे पश्चाताप करने से भी क्या होता है ? अतएव विवेकशील व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह जो वचन बोले, बिना समझे-बूझे बिना भली-भांति विचार किये कदापि न बोले।

—भाग ३ पृष्ठ १९७

२ जीभ की बदौलत भोगो और रोगो की भी प्राप्ति होती है। इस जिह्वा के कारण यश भी फैलता है और जूते भी खाने पडते है। मधुरभाषी की वाह-वाह होती है और कर्कश-कठोर बोलने वाला बेइज्जत

होता है। किसी की जवान चलती है, किसी के जूते चलते हैं। कभी-कभी तो जवान कि बदौलत तलवार भी चलने लगती हैं। द्रोपदी के एक वाक्य-वाण ने दुर्योधन को अपमानित किया और महाभारत युद्ध को जन्म दिया, जिसने भारत को घोर हानि पहुँचाई।

—भाग १४ पृष्ठ २३०

३ ऐसे मर्मभेदी कटुक कठोर असत्य वचन मत वोलो, जिनको वोलने मे तो देर नही लगती, मगर जिनका समाधान करने मे महीनो लग जाते हैं। कोई भी वात मुख से कहने मे क्या देरी लगती है? इधर जीभ चली लप और उधर पडी शप्प, और फिर लोग कहने लगे क्या लगाई है गप्प! इसलिए चाहे कोई साधु हो या श्रावक हो, सदा सावधान रहे और सोच-समझकर ही वोले। कभी कोई बुराई हो जाय तो उसे छुपाने की चेष्टा न करे, उसके लिए खीच-तान न करें, वल्कि उसी समय उसकी सफाई कर ले।

—भाग ४ पृष्ठ १२५

४. किसी के मुँह से, क्रोध मे गाली सुनकर मनुष्य को गहरा क्रोध और दुख होता है, मगर ससुराल मे

जाकर वही मनुष्य गालियाँ सुनकर प्रसन्न होता है। अगर सचमुच गाली मे दु ख होता तो ससुराल मे गाली सुनने से भी दु ख होना चाहिए था। जव मनोवृत्ति समभावमयो वन जाती है, ससार की कोई भी घटना और किसी भी वाह्य वस्तु का सयोग-वियोग मन पर असर डालने मे समर्थ नही होता, तव मनुष्य को दु ख का स्पर्श नही हो सकता।

—भाग ४ पृष्ठ ५

५ जिसके प्रति आपके मन मे जैसी भावना होगी, आपके प्रति उसके मन मे भी वैसी ही भावना होगी। जैसा चेहरा लेकर दर्पण के सन्मुख जाओगे, वैसा ही रूप देखने को मिलेगा। इस तथ्य के आधार पर प्रशस्त भावो से प्रेरित होकर अगर साधु उपदेश देगा तो श्रोताओ के चित्त मे भी प्रशस्त भावो का उदय होगा। अतएव व्याख्यान देते समय शुभ और स्वच्छ भावना रखनी चाहिए।

—भाग १७ पृष्ठ ६५

६. किसी के प्रति जव कुछ वोलने की इच्छा करो तो पहले उसे हृदय की तराजू पर तौल लो। अर्थात यह

विचार कर लो कि मैं जो वोलना चाहता हूं, वही शब्द अगर दूसरा मेरे प्रति वोले तो मुझे कैसे लगेगा। अगर आप उन शब्दो को अपने लिए पसन्द कर सकते हो, प्रिय समझ सकते हो तो दूसरो के प्रति उन शब्दो का व्यवहार कर सकते हो, अगर आपका दिल कहे कि ऐसे शब्द सुनना मुझे पसन्द नही है तो आप वह शब्द दूसरो को न सुनावे। जैसे आपकी आत्मा कटुक, कठोर शब्द सुनकर दुखित होती है, वैसे ही दूसरो की आत्मा को भी व्यथा होती है।

—भाग ४ पृष्ठ ६४

७. दूसरे के हृदय मे घाव कर देने वाले वचन वोलने की भी भगवान ने मनाई की है। देखो, वन्दूक, तलवार, भाला आदि शस्त्रो से लगा हुआ घाव तो अच्छा हो सकता है—कुछ दिनो मे वह घाव भर सकता है, मगर वचन रूपी गोली अन्तर तर की गहराई मे जव पैठ जाती है तो उसका निकलना वहुत कठिन हो जाता है। वचन का वाण वडा ही तीखा होता है। वह जन्म-जन्मान्तर मे सीधा हृदय मे घाव करता है।

—भाग ४ पृष्ठ ५०

८ वचनो का प्रभाव वहुत व्यापक होता है। अत. विचारशील पुरुष सदा सोच समझकर ही वोलते हैं। जो-जो विवेक युक्त और मधुर वचन वोलेंगे वे जगत को अपने वश मे कर लेंगे, उसी प्रकार जैसे कोयल अपनी मधुर कूक के द्वारा जग को वश मे कर लेती है।

—भाग ७ पृष्ठ १४०

९ वाण तो क्षणिक दु ख देता है और शूल भी दीर्घकाल तक कष्ट नही पहुँचाता, किन्तु वचन-वाण हृदय मे चुभने के पश्चात जीवन पर्यन्त सालते ही रहते हैं। उनका निकलना वडा मुश्किल होता है। कभी-कभी तो वे जन्म-जन्मान्तर मे भी वैर की परम्परा को जारी रखते हैं। अतएव कभी हृदय मे उत्तेजना उत्पन्न हो जाय और क्रोध आ जाय तो उस समय मौन धारण कर लेना ही उचित है।

—भाग १४ पृष्ठ २२९

१०. अगर तुम पवित्र आशय से किसी का सुधार करना चाहते हो, किसी के दोषो को दूर करना चाहते हो, तो इसमे कोई बुराई नही। मगर एकान्त मे कहो, और मधुर शब्दो मे कहो। ढिंढोरा मत पीटो। याद रखना चाहिए कि निन्दा करने वाला जैसे पाप का

भागी होता है उसी प्रकार रुचिपूर्वक पर-निन्दा सुनने वाला और सुनकर प्रसन्न होने वाला भी पापो का भागी होता है।

—भाग ४ पृष्ठ ५०

११ विवेकहीन होकर जो मन मे आया वही कह देने से दूसरो को कोसने और फटकारने से तो कोई बुराई दूर नही होगी। जो आदमी भेंस को दुहना भी चाहता है और डण्डे भी मारता है वह बुद्धिमान नही कहलाता। डण्डा मारने से भेंस लाते देगी, दूध नही देगी।

—भाग ४ पृष्ठ ५३

१२ बडप्पन का मान पाने के लिए अनिवार्य है कि आप अपने वचन का मूल्य समझे। जो मनुष्य अपने वचन की स्वय प्रतिष्ठा नही करता, वह दूसरो से प्रतिष्ठा कराने की आशा किसप्रकार कर सकता है? जो कार्य तुमसे नही हो सकता, उसके लिए साफ शब्दो मे इन्कार कर सकते हो। कौन तुम्हारी जीभ पकडता है।

—भाग १३ पृष्ठ ८६

१३ जिस वचन से किसी पर विपत्ति आती हो, उसे कहना उचित नही है। ऐसी बात सत्य की परिभाषा मे नही

आती। सत्य अहितकर नही होना चाहिए। किसी के मर्म को चोट पहुँचाने वाला भी नही होना चाहिए।

—भाग ४ पृष्ठ ४४

१४ कइयो की जबान ऐसी चलती है कि वे कइ पशुओ की, यहाँ तक कि मनुष्यो को भी गर्दन कटवा देते हैं। जो झूठा तोलते हैं वे तो तकड-कसाई कहलाते है और जो हिंसाकारी वचन बोलते हैं वे जीभकसाई कहे जाने चाहिए और जो हिंसा को उत्तेजित करने वाले लेख लिखते हैं वे क्या कलम-कसाई नही है ? यह सब ज्ञान की न्यूनता का ही फल है। किसी को ठेस न पहुँचने देने मे ही ज्ञान की सार्थकता है।

—भाग ४ पृष्ठ ६१

१५. दूसरे के प्रति उच्चारण किये गये अपशब्द, या कठोर शब्द उसे कोई हानि नही पहुँचायेंगे, बल्कि अगर वह समभाव से उन्हे सहन कर लेगा तो उसकी निर्जरा के कारण बनेगे, किन्तु बोलने वाले का तो एकान्त अहित ही होगा।

—भाग ३ पृष्ठ १६३

१६ अपनी जीभ को उपालम्भ दो। उससे कहो अरी जीभ ! तुझे खाने को तो मीठे-मीठे और नरम-नरम

गुलाब जामुन चाहिए, मगर उगलते समय यह क्या उगलती है ? तू मीठे को कडुवा और कोमल को कठोर क्यो बना लेती हैं ? तुझे खाने को मधुर चाहिए तो बोलते समय मीठा क्यो नही बोलती है ? खाना अच्छा चाहिए तो बोलना भी अच्छा चाहिए। अगर तुझसे मीठा नही बोला जाता तो तुझे मीठा खाने का क्या अधिकार है ?

—भाग ७ पृष्ठ १३८

१७ वाणी के रूप मे एक आदमी के मुख से निकला हुआ अमृत, कानो के द्वारा दूसरे आदमी के हृदय मे प्रवेश करके उसे आनन्दित, पुलकित और प्रसन्न कर देता है।

—भाग ७ पृष्ठ १३९

१८ जब भी कभी बोलना हो तो सोचे-विचारे बिना मत बोलो। पत्थर मत फेंको अपनी जीभ से। जीभ इस-लिए इतनी कोमल है कि उससे कठोर वचन न बोले जाएँ।

—भाग १४ पृष्ठ २३

१९. जिस जिह्वा से अमृत बहाया जा सकता है, उससे विष मत उगलो। इससे तुम्हे भी और सुनने वाले को भी बहुत हानि उठानी पडेगी।

—भाग ३ पृष्ठ २०२

२० शस्त्र का घाव तो थोडे ही दिनो मे मिट जाता है, मगर जवान का घाव मिटना वहुत मुश्किल है।

—भाग ३ पृष्ठ १६६

२१ मधुर वचनो का प्रयोग करने से जीभ नही कट जाती और न तालू ही भिदता है। अक्षरो की भी कमी पडने वाली नही है। फिर वचनो मे दरिद्रता क्यो की जाय ?

—भाग १५ पृष्ठ २३०

२२ जिस जिह्वा से पापो का उपार्जन किया जा सकता है उसी जीभ से पुण्य का भी उपार्जन किया जा सकता है और सवर एव निर्जरा भी की जा सकती है। फिर आप क्या पापो का उपार्जन करना पसन्द करेंगे ?

—भाग ४ पृष्ठ ६४

२३. भाइयो, अगर अपना हित चाहते हो, सुख चाहते हो, शान्ति चाहते हो, और मनुष्य मात्र को अपना मित्र बनाना चाहते हो तो सरल उपाय यही है कि तुम अप्रिय कटुक और कठोर शब्द बोलना त्याग दो। इसी मे तुम्हारी जिह्वा की सफलता है।

—भाग ७ पृष्ठ १४०



वीरता

१. वीरता के अभाव मे न धर्म ही रहता है और न धन ही रहता है। 'वीरभोग्या वसुन्धरा' उक्ति तो प्रसिद्ध ही है। जिसमे वीरता नही, उस पुरुष को मर्द कहा जाय या वर्द [वलद-बैल] और उन नारियो को बायाँ कहा जाय या गायाँ।

—भाग १८ पृष्ठ ४१

२ जो कार्य करने मे शूरवीर होगा, वही धर्म करने मे भी शूर होगा। असल मे मनुष्य मे पाई जाने वाली शूरता अखण्ड और अविभाज्य शक्ति है और कर्म तथा धर्म उसके दो क्षेत्र हैं। शूरता है तो कर्म मे भी प्रयुक्त हो सकती है और धर्म मे भी। शूरता का स्वामी आत्मा है। उस शक्ति का प्रयोग करना आत्मा मे निर्भर है। वह अपनी शक्ति को धर्म के क्षेत्र मे भी प्रयुक्त कर सकता है और कर्म के क्षेत्र मे भी। आत्मा के जैसे सस्कार होगे, वैसे ही वह अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा।

—भाग १५ पृष्ठ २६३

३. कोरा विचार करने से किसी का दु.ख नही मिट सकता। दु.ख तो मिटाने से मिटता है। अतएव सामर्थ्यवान पुरुषो को चाहिए कि वे अपने सामर्थ्य का सदुपयोग करे और दुखियो का दु ख दूर करे। जो ऐसा नही करते वे सामर्थ्यवान ही कैसे ? उनके सामर्थ्य की सार्थकता ही क्या ?

—भाग १८ पृष्ठ २३२

४ जब कोई व्यक्ति प्राणो की ममता छोडकर किसी सकल्प पर चट्टान की नाई अटल हो जाता है तो उसमे अद्भुत साहस आ जाता है। शरीर और प्राणो की ममता त्याग देने के बाद फिर डर ही क्या रह जाता है ?

—भाग ८ पृष्ठ २६२

●

वैराग्य

भीनास्य

१ जो जन्मा है, उसकी मृत्यु अनिवार्य है। जन्म ही मृत्यु का प्रमाण-पत्र है। जन्म के साथ-ही-साथ मृत्यु का ही जन्म हो जाता है। जो फूल लगा है वह टूटेगा ही।

—भाग ६ पृष्ठ १७६

२ तेल वीता और वत्ती बुझ गई। प्रकाश जहाँ दिखाई दे रहा था, वहाँ अन्धकार दिखाई देने लगता है। इसीप्रकार उम्र खत्म हुई कि सारा खेल खत्म हुआ। आँखे मिची कि अन्धकार ही अन्धकार है। फिर न महल, न मकान, न घोड़े न हाथी, न पत्नी न भाई न कुटुम्वी कोई भी दृष्टिगोचर न होगा।

—भाग १४ पृष्ठ २५

३ पानी मे शक्कर के वताशे को गलते क्या देर लगती है? जैसे लोग होली को फूंकते है, वैसे ही कुटुम्वी जन श्वास निकलते ही तुम्हारे शरीर को फूंक देंगे।

—भाग ७ पृष्ठ १५०

४ जो शूरवीर हाथ पर पर्वत उठाने का दावा करते थे, समुद्र को चुल्लू मे लेकर पी जाने का दम भरते थे, वे आज कहाँ है ? उनका कही नाम-निशान शेष रह गया है ? यह जमीन उन सबको निगल गई । किसी-किसी की तो ऐसी दुर्दशा हुई कि उन्हे जलाने वाले भी नही मिले। किसी को गाडने वाले मयस्सर नही हो सके। इसलिए भाई, जरा कल्पना के हिंडोले पर से उतरकर वास्तविकता की ठोस भूमिका पर खडा हो, यथार्थता का विचारकर। आखिर सबको मिट्टी मे मिल जाना है।

—भाग १६ पृष्ठ ६१

५ तूफान आया नही कि सघन मेघ मण्डल न जाने कहाँ से कहाँ जा पहुँचते हैं ? इसी प्रकार हमारे जीवन मे कौन जाने क्या तूफान आ जाए और कब जिन्दगी की पुर्णाहुति हो जाय ?

—भाग १७ पृष्ठ १७५

६ ससार का स्वरूप वडा ही लोमहर्षक है । यहाँ बाप को बेटा, बेटे को बाप और भाई उठाकर ले जाता है और श्मशान मे ले जाकर अग्नि को समर्पित कर

देता है। यह हाल दूसरों का ही होगा, तुम्हारा न होगा ऐसा सोचना भ्रमपूर्ण होगा। तुम्हारा भी एक दिन यही भविष्य है। यह प्रकृति का अनिवार्य विधान है। नृपति के विधान का उल्लघन हो सकता है और होता भी है परन्तु प्रकृति के विधान का उल्लघन करने की शक्ति किसी मे नही, परमात्मा मे भी नही।

—भाग १७ पृष्ठ १९७

७ सन्ध्या खिलती है तो वडी मुहावनी मालूम पडती है। पर वह कितनी सी देर ठहरती है ? आखिर अन्धकार ही अन्धकार चारो ओर फैल जाता है। इसीप्रकार ससार मे भोग-विलास सुहावने प्रतीत होते हैं मगर उसके पीछे अन्धकार ही अन्धकार है—चौरासी का चक्कर है, जिसमे घूमते रहो, घूमते रहो, पर कभी अन्त नही आ सकता।

—भाग ३ पृष्ठ २०५

८ अरे ! यह शरीर तो एक तमाशा है। आक की लकडी का पलग कितनी देर तक ठहर सकता है ? यह शरीर तो उससे भी अस्थायी है। काँच की शीशी हाथ से छूटी नही कि टुकडे-टुकडे हो जाती है। कच्ची मिट्टी

का घडा कितने दिनो तक चलता है। बस यही हालत आपके शरीर की है।

—भाग १२ पृष्ठ १८०

९ जिस कैदी के कैद की मियाद खत्म हो चुकी हो, जेलर उसे एक मिनट भी ज्यादा नही रख सकता। इसी प्रकार आयु के समाप्त हो जाने पर जीव एक पल भी जीवित नही रह सकता। चाहे कोई ताबित बाँधे, चाहे भैरो भवानी के सामने माथा रगडे या और कोई उपाय करे मगर आयु समाप्त होने पर उस जीव को शरीर का त्याग करना पडेगा।

—भाग १० पृष्ठ ८४

१० वृक्ष मे फल ही न लगे होते तो उनके गिरने का अवसर ही न आता, फल उत्पन्न हुए हैं तो निश्चय है कि वे सदा नही लगे रहेगे। एक न एक दिन अपनी स्थिति पूर्ण होने पर वे पककर नीचे गिर जायेंगे। इसी प्रकार अगर जीव ने जन्म न लिया तो मरने का भी प्रसग न आता। जन्म लिया है तो मरना अनिवार्य है। कोई अनन्तकाल तक जीवित नही रह सकता।

—भाग १५ पृष्ठ २६५

११ दुनिया पर दृष्टि डालकर देखोगे तो सब नाशवान ही नाशवान दिखाई देंगे। तू दो दिन के लिए चाहे जहर घोल ले चाहे अमृत। यह सब दो दिनो का मेला है। रावण का अहकार कितना टिका ?

—भाग ७ पृष्ठ १२२

१२ यह शरीर जड है और एक-न-एक दिन छूटने ही वाला है। कुछ दिन ठहरकर छूटने के बदले अगर आज ही छूट जाता है तो हानि क्या है ?

—भाग ६ पृष्ठ १६५

१३ ससार मे स्वार्थ की आत्मीयता है। सरोवर जब तक जल से परिपूर्ण रहता, तब तक पक्षीगण उसके किनारे खडे वृक्षो पर चहचहाते हैं, जैसे सरोवर की स्तुति कर रहे हो। मगर जब जल सूख जाता तो उड जाते हैं।

—भाग १५ पृष्ठ १३१

१४. शरीर क्षणभगुर तो है ही साथ ही इसका स्वरूप भी बडा विचित्र है। ससार मे जो वस्तुएँ अपावन से अपावन समझी जाती हैं उन्ही का यह पिण्ड और उन्ही से इसकी उत्पत्ति होती है। यह मनुष्य देह पशुओ की देह से भी गई गुजरी और घृणास्पद है।

जानवर कभी चूर्ण की फक्की नही लेते और न बुखार की दवा ही लेते हैं। किन्तु फिर भी तन्दुरुस्त रहते है और मनुष्य माल खाते-खाते भी बीमार हो जाते है।

—भाग १२ पृष्ठ १७८

१५ जैसे स्याही की गोली दूध से धोई जाय तो गोली तो शुद्ध होती नही, दूध ही मलिन हो जाता है, इसी प्रकार पानी से धोने पर शरीर शुद्ध नही होता बल्कि पानी ही शरीर के ससर्ग के अपवित्र हो जाता है।

—भाग १५ पृष्ठ २४३

१६ संसार मे वडी से वडी गन्दगी मल-मूत्र, कफ, रेंट और वमन आदि की समझी जाती है। मगर यह गन्दी वस्तुएँ कहाँ से आती है? न तो आसमान से वरसती है, और न किसी खान मे से निकलती है। इनकी उत्पत्ति का स्थान तो आपका प्रेमपात्र शरीर है, सुस्वादु सुमधुर और सुगन्धित अन्नपान उदर में डाल लीजिए परन्तु शरीर का ससर्ग पाते ही वह घृणास्पद वन जायेगा। मल-मूत्र के रूप मे परिणत हो जायेगा। इसप्रकार अशुचि का यह पिण्ड

शुचि से शुचि वस्तुओ को भी पल भर मे अशुचि वना डालता है ।

—भाग १२ पृष्ठ १७६

१७ भला जो शरीर उत्तम से उत्तम पदार्थों को भी अपने ससर्ग मात्र से अपवित्र वना देता है, वह जल से कैसे पावन हो सकता है ? यदि उसमे ऊपर से चमक-दमक आ भी गई तो उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है ?

—भाग ५ पृष्ठ २७४

१८ भाइयो ! सचमुच ही यह शरीर अशुचिमय है, मैले की थैली है ! इससे ज्यादा अपावन वस्तु ससार मे और कौनसी है ! पवित्र से पवित्र समझी जाने वाली वस्तु भी जव इसके ससर्ग मे आती है तो वह भी अपवित्र बन जाती है । ऐसा अपावन यह देह है ! जिस शरीर की उत्पत्ति ही रज और वीर्य जैसे घिनौने पदार्थों से हो, वह पवित्र कैसे होगा ? सौ बार इसे साबुन मल-मलकर धोओ, इत्र चुपडो अथवा खुशबूदार तेल लगाओ, शरीर कभी अपना स्वभाव नही त्यागने वाला है । कितना ही उत्तम भोजन

करो, उसे यह मल के रूप मे परिणत कर देगा। कितना ही सुगन्धित शर्बत पीओ, शरीर के साथ सम्पर्क होने पर वह मूत्र बन जायगा।

—भाग ६ पृष्ठ १९५

१९ अरे प्राणी! तू प्रतिदिन देख रहा है कि जिसकी जाति, उम्र और रूप तेरे समान था उन्हे मौत ने अपने पजे मे ले लिया। फिर भी तुझे इस ससार से विरक्ति और अरुचि नही होती! निश्चय ही तेरा हृदय फौलाद का बना है! ऐसा न होता तो अपने सरीखे मनुष्यो का मरण देखकर तुझे अवश्य थोडा बहुत विचार आता और तू मौत को जीतने का तथा परलोक को सुधारने का प्रयत्न करता। मगर तू तो निश्चित है! अपने मरे हुए सगे सम्बन्धियो के लिए चिन्ता करता है, मगर अपने लिए तनिक भी चिन्ता नही करता।

—भाग १५ पृष्ठ २९५

२० जन्म लेने से पहले नौ महीने तक तू माता के पेट मे रहा। वहाँ तूने विचार किया कि मैं इस दु ख से छूट जाऊँगा तो ईश्वर को याद करूँगा। मगर जब तेरा

जन्म हो गया तो दु ख को भी भूल गया और ईश्वर को भी विसर गया ! भलेमानुस ! सोच तो सही कि यहाँ पर तू किस उद्देश्य से आया है ? अपना कल्याण करने को आया है या अकल्याण करने को आया है ? लडने-झगडने को आया है, झूठी गवाहियाँ देने को आया है ? अरे ! तू निरजन निराकार पद प्राप्त करने को आया था और बीच ही मे गुलाववाई का सुख देखने मे मस्त हो गया। छोकरो और छोकरियो मे अपना आपा भूल गया ? यह तेरी कितनी दयनीय दशा है ?

—भाग ३ पृष्ठ २४२

२१ थोडे ही दिन पहले की बात है, तू ऐसी स्थिति मे था कि तेरा सिर नीचे और पैर ऊपर थे। माता का मल-मूत्र तेरे पास होकर निकलता था। यह विडम्बना दो-चार दिन ही नही नौ महीने तक सहन की है ! यह पढे-लिखे आलिम-फाजिल, होशियार सभी लोग औंधे लटके थे। अरे प्राणी ! अपने उनकी याद कर अव तू समझता है—जो कुछ हूँ, मैं ही हूँ। मैं मालदार हूँ, धनवान हूँ, करोडपति हूँ, मैं हाकिम साहव का वहनोई

हूँ। यह सब तो कहते हो मगर यह क्यो नही कहते कि किसी दिन मैं मल मे कीडा था ! यह क्यो भूल रहे हो ? अगर तू अपने अतीत हालत पर विचार करेगा तो तेरे अन्त करण मे अहकार को कहो जगह नही मिलेगी।

—भाग ६ पृष्ठ २१६

२२ भाइयो ! यमराज का हमला अनिवार्य है। उसे कोई रोक नही सकता। दूसरा आदमी अपनी आयु का कुछ हिस्सा देकर मरने वालो को जीवित रखना चाहे तो भी यमराज को कबूल नही। चरखा कातने वाली का धागा टूट जाय तो जुड सकता है। मगर टूटी हुई आयु फिर जुड नही सकती। चाहे संवत्सरी के दिन भी उपवास मत करो, एकादशी को भी व्रत मत रखो, रोजा भी मत रखो। फिर भी यह शरीर हमेशा नही टिकने का। काल इसे छोडने वाला नही, रे मनुष्य ! अगर तू ज्यादा खाकर ज्यादा मोटा-ताजा हो जायगा तो भी सदा जिन्दा नही रहेगा, अलबत्ता उठाने वालो को तकलीफ देगा। ऐसा समझकर आगे का इन्तजाम कर ले।

—भाग १ पृष्ठ २६०

२३ सचमुच यह शरीर बिलकुल कच्चा है, कांच से भी कच्चा है, कच्ची मिट्टी के बर्तन से भी ज्यादा कच्चा है। कच्ची मिट्टी का बर्तन ठोकर लगने पर ही नष्ट हो जाता है, मगर इसके नष्ट होने मे ठोकर लगने की भी जरूरत नही होती। जजसाहब कुर्सी पर बैठे-बैठे ही ढेर हो जाते हैं, और सेठजी मसनद का सहारा लिए ही लेटे रह जाते है। जब यह शरीर इतना कच्चा है तो इससे धर्मध्यान कर लेना ही सच्चा है। शरीर के ऊपरी भाग की सुन्दरता को देख-देखकर मनुष्य राजी होता है कि मेरा शरीर कितना सुन्दर है। मगर भीतर तो पोलमपोल है। उसकी ओर यह कभी ध्यान नही देता। अगर उस ओर ध्यान दिया जाय तो अहकार चूरचूर-हो जाय।

—भाग ७ पृष्ठ १२७

२४ यह मेरा अशन है, यह मेरा वसन है यह मेरी पत्नी है और यह मेरा बन्धु वर्ग है। इस तरह मैं और मेर-मेरा करते हुए पुरुषरूपी बकरे पर कालरूपी भेड़िया हमला कर देता है। तब उसका मैं-मैं

चिल्लाना सदा के लिए समाप्त हो जाता है। फिर भी जीव चेतता नही।

—भाग ५ पृष्ठ ११६

२५ भोले मनुष्य ! काल की काली और भयानक छाया तेरे पास आ रही है, कृतान्त तेरे जीवन को पल-पल मे निगलता जा रहा है। तू औरो के लिए रोता है, मगर अपने लिए क्यो उपेक्षा कर रहा है।

—भाग ५ पृष्ठ १२०

२६. हे मानव ! बिजली की चमक मे मोती पिरोना है तो पिरोले ! पलभर ही यह चमक रहने वाली है। समय चूका कि चूका ! यह मानव जीवन ऊँचे चढने के लिए मिला है या नीचे गिरने के लिए ? डॉक्टरी हाथ आई तो गरीबो से फीस न लेना तो क्या बिगड जायगा वकील बना है तो क्या दूसरो को फँसाने के लिए बना है ? तेरे वकील बनने से जाति और देश को क्या लाभ पहुँचा है ? भाई, देवयोग से तुझे जो कोई विशेष साधन-सामग्री मिली है, उससे कुछ भला काम करले। कहावत है "कर लिया सो काम भज लिया सो राम"

समय चूकने पर पश्चाताप करने से भी कुछ हाथ नही आता ।

—भाग १३ पृष्ठ ११४

२७ समस्त पदार्थों का नाता शरीर के साथ है और जब शरीर ही मेरा नही तो उसके नातेदार मेरे कैसे हो सकते हैं ?

—भाग ६ पृष्ठ ११६

२८ बुढापे मे उपेक्षा से काम नही चलेगा । काले मे धोला पड जाय तो खट सकता है, मगर धोले मे धूल पड गई तो सारा खेल बिगड जायेगा । अर्थात यह पिछली अवस्था बिगड जायेगी तो फिर पता नही लगेगा ।

—भाग १३ पृष्ठ ११६

२६ इस जीवन का भरोसा नही है । यह तो सन्ध्या काल की लालिमा के समान है । थोडी देर ठहरने वाली है अतएव एक क्षण भी व्यर्थ मत गँवाओ और प्रभु की भक्ति करके अपने जीवन को आनन्दपूर्ण और धन्य बना लो, इसके लिए सद्‌भावना और सदाचार की ही आवश्यकता है ।

—भाग ६ पृष्ठ ४७

३० मौत ने आकर चोटी पकड रखी है ऐसा समझकर

धर्म आचरण करना चाहिए। कोई नही जानता है कि अगला श्वास आयेगा या नही आयेगा।

—भाग ११ पृष्ठ २५४

३१ तुम अपना कल्याण चाहते हो तो जगल के हिरन की तरह निरालम्वी बन जाओ। हिरन वीमार पडता है तो किसी वैद्य की शरण नही लेता, किसी से सेवा-सुश्रूषा नही लेता और जब अच्छा होता है तो स्वय चारा खाता है। इसीप्रकार तुम भी अपने आपको निरालम्वी बनाओ। मृगापुत्र को वैराग्य हुआ तो उन्होने ऐसी ही साधना की और अपना कल्याण किया।

—भाग ६ पृष्ठ १३१

३२ इस मानव भव-प्राप्ति के दुर्लभ अवसर को व्यर्थ न जाने दो। यह अमोलक अवसर है। वार-वार मिलने वाला नही है। इसे विषय भोग मे नष्ट न करो। धन सम्पत्ति के लिए इस जीवन को नष्ट कर देना हीरो के बदले कोयला खरीदना है, कल्पवृक्ष को उखाड कर धतूरा वोना है।

—भाग ७ पृष्ठ २७१

२३ जो समझता न हो उसे समझाया जा सकता है, मगर जो समझ-बूझकर भी नासमझी के काम करे, उसके लिए क्या उपाय किया जाय ? सभी तो जानते है कि अवश्य जाना है और खाली हाथ जाना है, परन्तु ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे अनन्तकाल तक यही रहना है और फिर जाते समय सभी कुछ बटोर कर ले जाना है। ऐसे लोगो को किन शब्दो मे चेतावनी दी जाय ?

—भाग ४ पृष्ठ २१७

३४. पुन पुन चेतावनी देता हूँ कि यह अनमोल और ऊँचा मनुष्य जीवन सिर्फ मौज करने के लिए नही है। धन सचय करके क्या करोगे ? जहाँ जाना है वहाँ धन साथ नही जायगा। वहाँ तुम्हारी छोडी हुई लाखो करोडो की सम्पत्ति फूटी कौडी के बराबर भी काम नही आयेगी। तुमने जो भी अच्छे-बुरे कर्म किये होगे, वही तुम्हारे साथ जायेंगे। जब कभी कोई काम करो इसे स्मरण करते हुए ही करो। वृथा पाप की पोटली मत बाँधो। वह आगे चलकर तुम्हारे लिए मुसीबत का कारण बन जायगी।

—भाग ६ पृष्ठ १३०



विवेकवान

१ ज्ञानी और विद्वान मे अन्तर है। वाह्य पदार्थों की सूक्ष्म और गम्भीर जानकारी प्राप्त कर लेने वाला किन्तु आत्म-ज्ञान से विमुख व्यक्ति विद्वान कहला सकता है। किन्तु ज्ञानी वही कहलायेगा जो सम्यग्दृष्टि होगा और जिसने आत्मा के निगूढ रहस्यो का पता पा लिया होगा।

—भाग १३ पृष्ठ १०३

२ विवेकहीन मनुष्य धर्म की जगह भी कर्म का बन्ध कर लेता है, और विवेकवान पाप की जगह भी धर्म कर लेता है।

—भाग १७ पृष्ठ ७६

३ विवेक ससार मे वहुत वडी चीज है। वह मनुष्य का सवसे वडा गुण, सवसे वडा आभूषण, सवसे वडा मित्र है। विवेक जिसका सहायक है, उसे कभी और कही भी भयभीत होने की आवश्यकता नही है, वह कभी

और कही जाए कोई खतरा नही । मनुष्य का विवेक उसे सदैव निरापद बनाए रखता है ।

—भाग १७ पृष्ठ ७६

४ तलवार को मूठ की तरफ से पकडने वाला योद्धा तो अपने शत्रुओ का नाश कर सकता है और उसी तलवार को धार की ओर से पकडने वाला अपनी ही अँगुलियाँ काट लेता है । इसी प्रकार वहुत लिख-पढकर जो अपनी स्वच्छन्द बुद्धि से शास्त्रो की विपरीत प्ररूपणा करता है, वह आत्मवध और परवध के समान पाप करता है ।

—भाग १७ पृष्ठ ४८

५ भाइयो ! जैसे दीपक अन्धकार को मिटाकर उजाला करता है उसी प्रकार ज्ञान मनुष्य को रोशनी मे लाता है । रोशनी न हो तो किसी भी पदार्थ को ढूँढने मे कठिनाई होती है और रोशनी हो तो वस्तु फौरन मिल जाती है । इसी प्रकार ज्ञानवान आत्मा सत्य-असत्य को तत्काल समझ लेता है, अपने हित और अहित को पहचान लेता है ।

—भाग १६ पृष्ठ १४०

६ भाइयो ! ज्ञानी कौन और अज्ञानी कौन है । जो दूध मे

नमक डालता है वह अज्ञानी है और जो दूध मे मिश्री घोलता है वह ज्ञानी है। अर्थात् दूध के समान मनुष्य जीवन मे विषय-वासना का नमक मिलाने वाला अज्ञानी और धर्म की मिश्री घोलने वाला ही वास्तव मे ज्ञानी है।

—भाग १३ पृष्ठ १४४

७. समझदार और विवेकवान मनुष्य का कर्तव्य है कि वह दिनभर के कार्यों को यथावत सम्पन्न करने के लिए कार्यक्रम बना ले और उसमे धर्म-क्रिया के लिए भी समुचित समय नियत करे। दूसरो से मुलाकात करने के लिए समय नियत करते हो तो भाई आत्मा से मुलाकात करने के लिए भी कुछ समय नियत कर लो।

—भाग १ पृष्ठ ११३

८ मनुष्य की विवेकशीलता इस वात मे है कि भूतकाल से शिक्षा लेकर वर्तमान को सुधारे और वर्तमान का भविष्यत के लिए सदुपयोग करें। जिसमे इतनी भी वुद्धि नही, उसे मनुष्य कहना भी कठिन है।

—भाग १७ पृष्ठ ११

९ सच्चा ज्ञानी वह है जिसने दुनिया से अपनी ममता

हटा ली है, जो अभिमान नही करता और ससार सम्बन्धी ससर्गो से बचते रहने की कोशिश करता रहता है। जिसे खाने को अच्छा मिले तो खुशी नही और खराब मिले तो नाराजी नही सब पर जिसका समभाव है और जो सदैव आत्मा की ओर खयाल रहता है।

—भाग ३ पृष्ठ २७७

१० ज्ञानी और अज्ञानी मे बहुत बडा अन्तर है। अपनी निर्मोह भावना के कारण ज्ञानी इसी जीवन मे समता के अपूर्व रस का आस्वादन करता है जब कि अज्ञानी विषम भावना के कारण शोक सन्तप्त और व्याकुल बनकर अशान्ति का पात्र बनता है। ज्ञानी परलोक मे भी सुखी होते है और इस लोक मे भी सुखी रहते हैं। परन्तु बेचारे अज्ञानी को कही भी सुख नसीब नही होता, उसका अज्ञान सदैव उसे सन्ताप दिया करता है।

—भाग ६ पृष्ठ २२६

११ जैसे कमल जल मे रहता हुआ भी जल से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार ज्ञानीजन दुनिया से अलिप्त रह सकता है ?

—भाग ८ पृष्ठ २२२

१२. जेलखाने मे रहने वाला कैदी, कैदियो की सभी मर्यादाओ का पालन करता है और कैदखाने में रहता है, फिर भी वह क्या कैदखाने मे अनुरक्त होता है? नही। वह तो यही सोचता है कि कब सजा की अवधि पूरी हो और कब मैं कारागार से छुटकारा पाऊँ? इसी भाँति ज्ञानी पुरुष ससार-व्यवहार करता भी यही भावना रखता है कि कब आयेगा वह दिन कि बनूं साधु विहारी। वह सौभाग्य का सूर्य कब उदित होगा कि मैं ससार के प्रपच के अलग होकर अपनी आत्मा मे रमण करूँगा।

—भाग ८ पृष्ठ २०२

१३. राग और द्वेष जो अज्ञानी जनो मे विषम भावना उत्पन्न करके घोर सताप पहुँचाते रहते हैं, ज्ञानी का क्या विगाड सकते है? इसी प्रकार जिस ज्ञानी ने ज्ञानजनित सम्मान धारण कर लिया है, राग-द्वेष के काँटे उसकी कुछ भी हानि नही कर सकते।

—भाग ७ पृष्ठ १२५

१४. ज्ञानवान पुरुष अपने अज्ञान को जानता है, इसीलिए तो वह ज्ञानवान है। उस अज्ञानी के अज्ञान की कहाँ

सीमा है जो अपने अन्त करण मे फैले हुए अज्ञान को भी नही समझ पाता।

—भाग ८ पृष्ठ ३२

१५. कोई लोग कहते हैं कि हमे सब कुछ मालूम है अब कुछ भी मालूम करना नही है। ऐसा समझने वालो की वीमारी असाध्य है, जो आदमी अपने अज्ञान को जानता है वह थोडा वहुत जानता है। परन्तु जिसे अपने अज्ञान का ही पता नही है, वह वडे से बडा अज्ञानी है और उसका अज्ञान दूर होना भी वहुत कठिन है।

—भाग ८ पृष्ठ २७४

१६ अज्ञानी को सरलता से समझाया जा सकता है और ज्ञानवान को समझाना और भी सरल है। मगर थोडा सा ज्ञान पाकर जो अपने आपको महापण्डित समझ वैठा हो, उसे तो ब्रह्मा भी नही समझा सकता।

—भाग ८ पृष्ठ १०६

१७. अज्ञानी लोगो को समझाना उतना कठिन नही है जितना कि ज्ञान का अभिमान रखने वाले अपने आपको ज्ञानवान समझने वाले लोगो को समझाना कठिन होता है।

—भाग ८ पृष्ठ १०६

१८. भाइयो ! यदि आप स्वय ज्ञानवान नही हैं तो ज्ञानवान वनने का प्रयत्न कीजिए। नही वन सकते हो, ऐसी दुर्बल भावना को अन्त करण से निकाल कर बाहर कर दीजिए। इतना न बन सके तो कम से कम ज्ञान और ज्ञानवानो का आदर कीजिए, जिससे ज्ञान की प्रतिष्ठा बढे और लोगो का ध्यान ज्ञान की ओर जाय और वे ज्ञानवान बनने का प्रयत्न करें।

—भाग ७ पृष्ठ ११८

१९ ससार का सुख और दु ख एक प्रकार की हृदय की सवेदनाएँ हैं। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि एक सरीखी घटना दो समान रूप से सम्वद्ध व्यक्तियो पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव डालती है। मनुष्य के सुख-दु ख का आधार वाह्य घटना उतना नही जितना हृदय की अनुभूतियाँ है। ज्ञानी की अनुभूतियाँ ऐसी विवेकमयी होती हैं कि वाह्य घटनाएँ उसके चित्त को उतना प्रभावित नही करती, जितनी कि अज्ञानी को करती हैं। अतएव दु ख के कारण उपस्थित होने पर ज्ञानी उतना दुखित नही होता, जितना कि अज्ञानी होता है। इस प्रकार ज्ञानी का ज्ञान उसे दु खो की अनुभूति

से वचाने के लिए कवच का काम करता है, जबकि अज्ञानी का अज्ञान उसके लिए विष-बुझे वाण का काम करता है। अज्ञानी और ज्ञानी का यह अन्तर साधारण नही है।

—भाग १३ पृष्ठ १०७

२० जैसे स-सूत्र (डोरा सहित) सूई गिर जाय तो भी गुम नही होती, मिल जाती है उसी प्रकार सूत्र (शास्त्रज्ञान) से युक्त जीव इस ससार मे रहता हुआ भी संसार के क्लेशो से वच सकता है।

—भाग १४ पृष्ठ २६२



विग्रह और संगठन

१. देखो कुत्ते आपस मे लडते है तो उनकी जाति मे एक-एक कुत्ती के चार-चार आठ-आठ वच्चे होने पर भी अधिक सख्या वढती नही है। परन्तु वकरे आपस मे नही लडते, इतना ही नही उनमे आपस मे इतनी सहानुभूति होती है, कि एक बकरा दूसरे वकरे पर पैर रखकर भी पत्ते खाता है। इस सहानुभूति के कारण हजारो वकरो का प्रति दिन कत्ल होने पर भी उनकी सख्या वढती ही चली जाती है।

—भाग ११ पृष्ठ ७२

२. कुत्ता कुत्ते को देखकर गुर्राता है। मनुष्य यदि मनुष्य को देखकर गुर्राने लगे तो उस मनुष्य और कुत्ते मे क्या अन्तर है।

—भाग १४ पृष्ठ २०१

३ जहाँ फूट है, वहाँ लूट है।

—भाग १६ पृष्ठ ६५

४ वास्तव मे जहाँ एकता और सगठन है, वहाँ शक्ति है,

वल है, विजय है, जहाँ फूट वहाँ वर्वादी है, विनाश है और पराजय है।

—भाग १३ पृष्ठ ७१

५. ससार मे प्रेम वडी चीज है। प्रेम मे परमात्मा का वास है। प्रेम का माधुर्य रसना को नही वरन् अन्तरात्मा को भी तृप्त करने वाला है। प्रेम मे ही सगठन है। प्रेम के अभाव मे सगठन नही होता। जहाँ सगठन नही होता वहाँ एकता नही होती। एकता के विना कल्याण नही। जहाँ फूट पड जाती है वहाँ विनाश के सिवाय और क्या हो सकता है।

—भाग १३ पृष्ठ ६९

६ माताओ के स्तनो मे रक्त भरा है। स्तन काटने पर लाल-लाल खून ही निकलेगा। लेकिन जव वालक गर्भ मे आता और जन्म लेता है तो वही लाल रग का रुधिर श्वेत दूध के रूप मे पलट जाता है। इसका कारण वच्चे के प्रति माता का वात्सल्य भाव है। जव एक वच्चे की वत्सलता ने माता के रक्त को दूध वना दिया तो जगत के अनन्त जीवो पर असीम वात्सल्य रखने वाले भगवान का रुधिर दुग्धवर्ण हो इसमे कौन सी अनहोनी वात है।

—भाग १६ पृष्ठ १६५

७. पारस्परिक सहानुभूति और सहयोग के अभाव मे कोई भी वर्ग वास्तव मे सुखी हो ही नही सकता। समाज मे शान्ति और देश मे समृद्धि लाने के लिए आज प्राचीन कालीन सद्भावनाओ की अनिवार्य आवश्यकता है।

—भाग ३ पृष्ठ १६२

८. भाइयो! आप किसी भी कलहप्रिय व्यक्ति के चक्कर मे न पडें। रस्सी के तार मिले हुए रहेगे तो टूट नही सकेगे। इसी प्रकार आप भी मिलकर रहेगे तो कोई भी बाल बाँका नही कर सकेगा।

—भाग ११ पृष्ठ १२३

विद्यार्थी को शिक्षा

१. शिक्षा के इच्छुक व्यक्ति मे लोलुपता नही होनी चाहिए । जो खाने-पीने की लालसा रखता है, जो चटोरा है, जिसका दिल मलीदा उड़ाने मे ही लगा रहता है, उसका चित्त शिक्षा की तरफ नही दौडता । अतएव जो लोलुपता से रहित होगा, खान-पान सम्बन्धी आसक्ति जिसमे नही होगी वही शिक्षा को प्राप्त कर सकेगा ।

—भाग ४ पृष्ठ १२५

२ पढने-लिखने वालो को नाटक-सिनेमा की तरफ ध्यान नही देना चाहिए । जिसे नाटक-सिनेमा देखने का शौक लग जाता है उसका ध्यान पठन-पाठन मे नही लगता । वह आमोद-प्रमोद को ही पसन्द करने लगता है । उसमे अनेक प्रकार की बुराइयाँ आ जाती है । अनैतिकता आ जाती है । उसकी चित्तवृत्ति दूषित बनी रहती है । नाटक सिनेमा मे अकसर असभ्य और अशिष्ट वृत्तियो का प्रदर्शन किया जाता है और साधा-

रण आदमी पर उसका बुरा प्रभाव पडता है। इस कारण जो उस ओर ध्यान नही देता, वही शिक्षा प्राप्त करता है।

—भाग ४ पृष्ठ १२४

३ जो वात-वात मे हँसी मजाक किया करता है, उसे शिक्षा प्राप्त नही होती। अतएव शिक्षा के इच्छुक पुरुष को हँसनशील नही होना चाहिए। कहा जा सकता है कि हँसी-मजाक करने से शिक्षा प्राप्ति मे क्या बाधा आ सकती है ? इसका उत्तर यह है कि जिसकी आदत हँसी करने की होती है, वह अच्छी-से-अच्छी वात को भी हँसी मे उडा देता है। वह सभ्यता और शिष्टता को भी भूल जाता है। वह वडो की मर्यादा का भली-भाँति पालन नही करता और जव अविनीतता उसमे आ जाती है तो वह शिक्षा का पात्र नही रह जाता।

—भाग ४ पृष्ठ १२४

४. घोडे को अगर हमेशा घुडशाला मे बँधा रखोगे तो वह भी समय पर अडेगा। विद्या का भी यही हाल होता है। विद्या त्रिपक्षी कहलाती है। तीन पखवाडो

या डेढ महीने मे सीखे हुए ज्ञान की आवृत्ति कर लेनी चाहिए, नही तो वह विस्मृत हो जाती है। इसी प्रकार सेकते समय रोटी को अगर फेरा न जाय तो वह जल कर राख हो जायगी।

—भाग ४ पृष्ठ १७५

५. सीखे हुए ज्ञान की वार-वार आवृत्ति करनी चाहिए। वार-वार आवृत्ति करते रहने से ज्ञान स्थिर हो जाता है और विकसित होता है। उसमे नवीनता आती रहती है। सेना के सिपाहियो को कवायद करवाई जाती है। उसका उद्देश्य यही होता है उनका अभ्यास छूट न जाय और मौका पडने पर चूक न हो जाय।

—भाग ४ पृष्ठ १७४

६. जो पाँच पैर आगे रखकर सात कदम पीछे लौट आता है, वह अपनी मजिल कभी पूरी नही कर सकता है? अन्धी पीसती जाय और कुत्ता खाता जाय तो उस आटे की रोटियाँ वनने की क्या कभी नौवत आयेगी? इस प्रकार जो इधर सीखता जाता है और उधर भूलता जाता है, वह कभी विद्वान नही बन सकता है।

—भाग ४ पृष्ठ १२३

७. आपसे कितनी ही भयकर गलती क्यो न हो गई हो, योग्य गुरुजन के समक्ष प्रकट करने मे लज्जित मत होओ। यदि ऐसा किया तो जैसे नाव पर चढ कर लोग नदी पार कर लेते हैं उसी प्रकार आप ससार-समुद्र का पार पा लेगे।

—भाग ४ पृष्ठ १३०

●

विद्या की महत्ता

१ विद्या की विशेषता यही है कि ज्यो-ज्यो दूसरे को वह दी जाती है, त्यो-त्यो उसकी वृद्धि होती है। नदी के किनारे के जलाशयो से ज्यो-ज्यो पानी निकाला जाता है, त्यो-त्यो उनमे अधिकाधिक आता जाता है। मूर्ख मनुष्य को छेडना ठीक नही है पर विद्यावान को छेडने मे लाभ है। छेडने पर वह कुछ बोलेगा तो कुछ न कुछ अच्छी बात ही कहेगा। इसी आशय से कहावत प्रचलित है—दाना दुश्मन भला, नादान दोस्त भला नही।

—भाग ६ पृष्ठ १३७

२ विद्या मनुष्य का असली रूप है—सौंदर्य है, विद्या छिपा हुआ धन है, विद्या से भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त होती है, विद्या यश और सुख देने वाली है, विद्या के प्रभाव से मनुष्य गुरुओ का भी गुरु बन जाता है। जब मनुष्य विदेश मे जाता है तो विद्या ही सहायक

होती है। लोग भाग्य को बहुत बडी चीज मानते हैं परन्तु विद्या से बढकर और कोई सौभाग्य नही है, विद्वान पुरुष की राजा भी पूजा करते हैं, धन की पूजा नही करते। विद्या की ये सब विशेषताएँ धन मे नही है। सच पूछो तो विद्याहीन मनुष्य आकृति से मनुष्य होने पर भी पशु के समान है।

—भाग ५ पृष्ठ १०१

३ आज विद्यार्थियो के ऊपर पाठ्यक्रम की पुस्तको का भारी बोझा लाद दिया जाता है। यह बोझा इतना भारी होता है कि विद्यार्थी की सम्पूर्ण शक्ति उसके भार से दब जाती है। केवल दिमागी पढाई ही पढाई जाती है। प्राचीन काल की शिक्षा सर्वांगीण थी। वह मस्तिष्क का विकास करने वाली, आत्मा का भान कराने वाली और समग्र जीवन को ऊँचा उठाने वाली थी। उस शिक्षा के साथ सुसस्कारो का मेल भी होता था। इस प्रकार की शिक्षा पाया हुआ मनुष्य अपने जीवन सग्राम मे विजयी होता है। एकागी शिक्षा जीवन को भारभूत बना देती है।

—भाग ६ पृष्ठ २६७

४. गुरुकुलो मे सब वालक समान रूप से जीवन व्यतीत करते थे। चाहे कोई राजकुमार हो चाहे रक-पुत्र हो, उनके साथ एक-सा व्यवहार किया जाता था। इस कारण आगे चलकर राजा और रक के वीच कोई खाई नही रहती थी और उनके पारस्परिक-सम्वन्ध वहुत मधुर होते थे।

—भाग १ पृष्ठ १३५

उपदेशक का कर्तव्य

१ उपदेशक को ऐसा उपदेश न देना चाहिए, जिससे इन्द्रियाँ विषय-सेवन के लिए उत्सुक हो जायँ और चित्त मे काम वासना जाग्रत हो जाय। काम वासना का जागरण होने से शरीर का राजा वीर्य पतला पड जाता है और फिर शरीर के पतन मे भी विलम्ब नही लगता। अतएव कामोद्दीपिन करने वाली कथा करना जहर का प्याला पिलाने के समान हानिकारक है।

—भाग १० पृष्ठ २०४

२ विनीत को ही शिक्षा देना योग्य है। अविनीत को शिक्षा देना निरर्थक ही नही, हानिकारक भी होता है।

—भाग ६ पृष्ठ १३४

विचार-महत्ता

१ मनुष्य को चाहिए कि कोई भी काम करने से पहले वह उसके परिणाम का भली-भाँति विचार कर ले। जो परिणाम का विचार नही करते उन्हे दु ख उठाना ही पड़ता है।

—भाग ३ पृष्ठ २०९

२. जो पहले सोचकर काम करता है वह अक्लमन्द है। उसे बाद मे पश्चात्ताप नही करना पडता। उसका कार्य सफल होता है। इसके विपरीत जो मनुष्य पहले विना विचारे काम करता है उसे काम कर चुकने के पश्चात पछताना पडता है। जो सोचकर करेगा उसका मुख उज्ज्वल होगा और जो पहले करेगा पीछे सोचेगा उसके मुख पर धूल पडेगी। अर्थात् उसे निन्दा का पात्र वनना पडेगा और पश्चात्ताप की आग मे झुलसना पडेगा।

—भाग ३ पृष्ठ १८३

३ बुद्धिमान वही गिना जाता है जो आगे का विचार करके कार्य करता है। आप लोग भी भविष्य का सोचकर ससार-व्यवहार चलाते हैं। पर आपका भविष्य भी बहुत सकीर्ण है। आप इस जीवन के सम्बन्ध मे ही सोचते हैं, उससे आगे की नही। जैसे आप समझते हो कि इस जीवन के पश्चात फिर कोई जीवन होगा ही नही। जीवन के अन्त के साथ आत्मा का भी अन्त आ जायेगा। कभी आगे विचार किया भी तो बाल-बच्चो के भविष्य का विचार किया, पर आत्मा के परभव के विषय मे सोचने वाले कितने हैं? यह कितना विचारणीय विषय है?

—भाग १६ पृष्ठ २०५

४. अगर आप किसी बात को पूरी तरह नही समझे हैं तो जब तक उसे समझ न ले, और उसका निर्णय न कर लें, तब तक उसे दूसरो पर प्रकट न करे। क्योंकि बिना समझी बात को कह देना शिष्टता से विरुद्ध है, उसमे असत्य होने की सम्भावना रहती है, और अनेक प्रकार के झगडे उठ खडे होते है। जो लोग बिना ठीक तरह समझे-बूझे मुंह से बात कह देते है, उन्हे अकसर

पश्चात्ताप करना पडता है। दूसरो के सामने नीचा देखना पडता है और हानि उठानी पडती है। वे समय पर मूर्ख बनते हैं।

—भाग ८ पृष्ठ १६५

५. अपनी बुद्धि से स्वय हित-अहित का विचार न करके दूसरो का अनुकरण करना अपनी प्रज्ञा का अपमान करना है। अगर तुम अपनी निज की बुद्धि से नही सोचते तो तुम्हारी बुद्धि किस काम की है। अपनी बुद्धि का उपयोग करने वाले ही वास्तव मे बुद्धिमान कहलाने के अधिकारी है। अतएव हित-अहित का स्वय विचार करो और कोई भी रूढि, कितने ही प्राचीनकाल से क्यो न चली आई हो अगर विचार की तराजू पर बराबर नही तुलती तो उसे त्याग दो।

—भाग १४ पृष्ठ १३

३ बुद्धिमान वही गिना जाता है जो ढ
करके कार्य करता है। आप लोग
सोचकर ससार-व्यवहार चलाते
भविष्य भी बहुत सकीर्ण है। आ
सम्बन्ध मे ही सोचते हैं, उससे आ
आप समझते हो कि इस जीवन के
जीवन होगा ही नही। जीवन के अ
का भी अन्त आ जायेगा। कभी
भी तो बाल-बच्चो के भविष्य का
आत्मा के परभव के विषय मे सोच
यह कितना विचारणीय विषय है

४. अगर आप किसी बात को पूरी त
जब तक उसे समझ न ले, और
लें, तब तक उसे दूसरो पर प्र
बिना समझी बात को कह देना
उसमे असत्य होने की स
प्रकार के झगडे उठ खडे होते
तरह समझे-बूझे मुंह से बात

का सर्वथा त्याग नही करते । अगर वे त्यागते हैं तो निश्चय को प्राप्त नही कर सकते ।

—भाग ४ पृष्ठ १११

४ जहाँ पक्ष है वहाँ हठ है, वहाँ अविवेक है, जहां अविवेक है वहाँ असत्य है, जहां असत्य है वहाँ पाप है और जहां पाप है वहाँ अकल्याण है ।

—भाग ८ पृष्ठ १६७

५ पक्षी दो पखो से उड सकता है । एक पख अगर टूट जायेगा तो कीड़े की तरह रेंगता हुआ भले ही चल ले, मगर पक्षी की तरह उड नही सकता । इसी प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनो को अपनी दृष्टि के सामने रखकर ही आचरण करना चाहिए । जो लोग निश्चय के प्रेमी हैं उन्हें व्यवहार का भी निषेध नही करना चाहिए और जो व्यवहार मे ही रचे-पचे हैं उन्हें निश्चय स्वरूप को भी समझने का प्रयत्न करना चाहिए । एकान्तवाद प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध है । अतएव एकान्त को मानना योग्य नही है । मुमुक्षु पुरुष दोनो पखो की तरह यथायोग्य दोनो का अवलम्बन करके अपनी आत्मा का कल्याण करता है । एकान्तवादी का कल्याण होना कठिन है । —भाग ४ पृष्ठ ११३

विचार-भेद

१. भाइयो ! दर्शन का अर्थ है देखना। देखना नेत्रो से होता है और अन्तरात्मा मे भी होता है। नेत्रो से जो देखा जाता है वह वस्तु का प्ररूप कहलाता है और जो अन्तरात्मा से देखा जाता है वह वस्तु का स्वरूप कहलाता है। इस वस्तु स्वरूप को और फिर उसके प्रतिपादक शास्त्र को भी दर्शन कहते हैं।

—भाग १७ पृष्ठ १८२

२ स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रति दृढ आस्था रखते हुए भी जैन आपस मे लडे और कलह करे तो कैसे समझा जाय कि उन्होने प्रभु के वास्तविक उपदेश को समझा है ?

—भाग ३ पृष्ठ १०८

३. निश्चय सत्य है, आराध्य है, परमार्थ है, यह सत्य है परन्तु निश्चय की प्राप्ति साधन के बिना नही हो सकती और व्यवहार ही उसका साधन है। एकान्त निश्चय का आग्रह करने वाले और व्यवहार को उपेक्षणीय और त्याज्य समझने वाले भी व्यवहार

का सर्वथा त्याग नही करते। अगर वे त्यागते हैं तो निश्चय को प्राप्त नही कर सकते।

—भाग ४ पृष्ठ १११

४ जहाँ पक्ष है वहाँ हठ है, वहाँ अविवेक है, जहाँ अविवेक है वहाँ असत्य है, जहाँ असत्य है वहाँ पाप है और जहाँ पाप है वहाँ अकल्याण है।

—भाग ८ पृष्ठ १६७

५ पक्षी दो पखो से उड सकता है। एक पख अगर टूट जायेगा तो कीड़े की तरह रेंगता हुआ भले ही चल ले, मगर पक्षी की तरह उड नही सकता। इसी प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनो को अपनी दृष्टि के सामने रखकर ही आचरण करना चाहिए। जो लोग निश्चय के प्रेमी हैं उन्हें व्यवहार का भी निषेध नही करना चाहिए और जो व्यवहार मे ही रचे-पचे हैं उन्हे निश्चय स्वरूप को भी समझने का प्रयत्न करना चाहिए। एकान्तवाद प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध है। अतएव एकान्त को मानना योग्य नही है। मुमुक्षु पुरुष दोनो पखो की तरह यथायोग्य दोनो का अवलम्बन करके अपनी आत्मा का कल्याण करता है। एकान्तवादी का कल्याण होना कठिन है। —भाग ४ पृष्ठ ११३

६ निश्चयनय वस्तु के शुद्ध स्वरूप का—उसकी असलियत का विचार करता है। इसी दृष्टि से आत्मा सिद्ध और बुद्ध कहलाता है। व्यवहारनय आत्मा के अशुद्ध स्वरूप का विचार कराता है, दोनो नयो से दोनो प्रकार का स्वरूप समझकर, अशुद्ध स्वरूप से शुद्ध स्वरूप मे जाना उचित है, व्यवहारनय आत्मा की मौजूदा स्थिति को बतलाता है और निश्चयनय हमारी आदर्श स्थिति को बतलाता है। आत्म-कल्याण के लिए दोनो उपयोगी है। निश्चय को भुला देने से हमारा कोई लक्ष्य ही नही रह जायगा और हमे यह भी पता नही चलेगा कि आखिर हम कहाँ पहुँचना चाहते हैं? क्या चाहते है? हमारा उद्देश्य क्या है? इस प्रकार लक्ष्यहीन होकर हम भटकते फिरेगे। इसी प्रकार व्यवहार को भुला देने से हम लक्ष्य की ओर आगे बढ नही सकेगे, हमारा मार्ग अवरुद्ध हो जायगा। अतएव निश्चय के साथ व्यवहार और व्यवहार के साथ निश्चय की आवश्यकता है।

—भाग ४ पृष्ठ ११२

७ बहुत से विषय तर्कगम्य होते हैं, और बहुत सी बाते

श्रद्धागम्य होती है। तर्कगम्य बातो का निर्णय तर्क से ही करना चाहिए। उनमे श्रद्धा को घुसेडना उचित नही है। इसी प्रकार श्रद्धागम्य विषयो मे तर्क को घुसेडना अनुचित है। बुद्धिमान पुरुष इसी प्रकार विवेक से काम लेते है।

—भाग ६ पृष्ठ ७

८ लोग व्यर्थ ही नाम के झगडे मे पड जाते हैं, तत्त्व का विचार नही करते। अगर नाम के पर्दे को हटाकर तत्त्व पर विचार किया जाय और दूसरो की दृष्टि को शान्ति के साथ समझने का धैर्य रखा जाय तो मतभेद प्राय नष्ट हो जाएँ।

—भाग १३ पृष्ठ २८८

९ दृष्टिभेद ही मतभेद का मूल है।

पृष्ठ २३३

१० मत विभिन्नता का कारण अल्पज्ञता है। परिपूर्ण ज्ञान के होने पर किसी प्रकार का मतभेद नही रहता। अपूर्णता मे अनेक कोटियाँ होती हैं किन्तु पूर्णता स्वय एक ही कोटि है। उस कोटि पर पहुँचने वालो से किसी प्रकार का मतभेद नही हो सकता।

—भाग १० पृष्ठ २२४

●

सज्जन

१. चन्दन काष्ठ को लीजिए उसे आग मे झोक दीजिए, जलते-जलते भी सुगन्ध ही देगा। काटकर टुकडे-टुकडे कर दिये जाएँ तो भी सौरभ ही फैलायेगा। सज्जन पुरुष के प्रति दुर्व्यवहार किया जाय तो भी वह बदले मे सद्व्यवहार ही करता है।

—भाग ८ पृष्ठ २०६

२ जैसे सिहनी का दूध सोने के पात्र मे ही ठहर सकता है। उसी प्रकार वीतराग की वाणी भी सद्गुणवान—सुपात्र में ही ठहर सकती है।

—भाग ८ पृष्ठ २१६

३ जैसे सूर्य कभी अन्धकार नही करता, उसी प्रकार भले आदमी कभी किसी का बुरा नही करते।

—भाग ८ पृष्ठ २०६

४ दुष्ट मनुष्य अपनी दुष्टता नही छोडता तो सज्जन को अपनी सज्जनता भी नही छोडनी चाहिए।

—भाग ८ पृष्ठ २०१



